आंचलिक पत्रकार

ISSN 2319-3107

416

सितंबर, 1981 से प्रकाशित

15 दिसंबर 2016

मूल्य ₹ 25/-

प्रकृति की बात समाज के साथ

धरती का बुखार और जलवायु परिवर्तन

"जलवायु परिवर्तन की समस्या सार्वदेशिक है, विश्वव्यापी है। यह किसी एक की समस्या नहीं, बल्कि सबकी समस्या है। ऐसे में सबको चिंतित होने तथा समाधान में भागीदार बनने की जरूरत है।"

जनसंचार माध्यमों और विज्ञान संचार की शोध पत्रिका

आर.एन.आई.पं.क्र. MP HIN/2004/12178, डाक पंजीयन क्र. म.प्र. भोपाल/162/2015-17

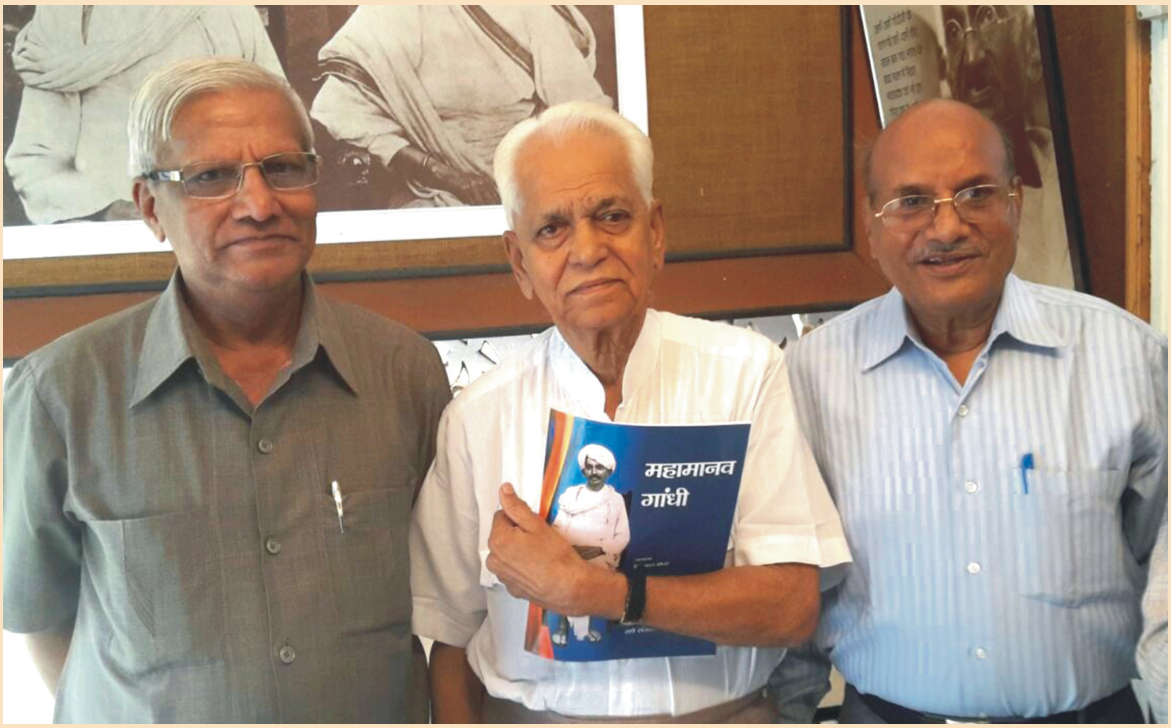

सप्रे संग्रहालय के उपाध्यक्ष डा. रत्नेश ने गांधीवादी कर्मयोगी डा. एस.एन. सुब्बराव को उनके भोपाल प्रवास में 'महामानव गांधी' पुस्तक भेंट की। इस अवसर पर पुस्तक के संपादक श्री विजयदत्त श्रीधर भी मौजूद थे। सुब्बराव जी ने पुस्तक की विषय वस्तु और प्रस्तुति की प्रशंसा करते हुए कहा कि महात्मा गांधी कर्म और विचार के रूप में परेशान हाल दुनिया की समस्याओं का समाधान हैं।

ISSN 2319–3107

आंचलिक पत्रकार

जनसंचार माध्यमों
और विज्ञान संचार
की शोध पत्रिका

अनुक्रम

4. अपनी बात

6. धरती का बुखार और जलवायु परिवर्तन / डा. कपूरमल जैन

31. दोधारी तलवार पर हैं जम्मू–कश्मीर के पत्रकार / सुरेश डुग्गर

34. लोकजीवन का चितेरा पत्रकार संजय द्विवेदी

37. इसलिए अखरता है विजय सहगल का चले जाना / रमेश नैयर

40. एक संवेदनशील रचनाकार का यूँ चले जाना... / अरुन नैथानी

लेखकों से अनुरोध

● लेख ईमेल पर ही भेजिए। हाथ की लिखी या स्केन की हुई कापी न भेजें। ● लेख अधिकतम 1000 शब्दों तक का हो। बड़े लेख न भेजें। ● छोटे-छोटे वाक्य लिखें। ● माइक्रो साफ्ट वर्ड में कृतिदेव 010 फोंट का प्रयोग करें। ● पत्रकारिता, जनसंचार और विज्ञान संचार के अलावा अन्य कोई सामग्री इस पत्रिका में नहीं छपती। ● तथ्य और आँकड़े जाँचने के बाद ही लेख भेजिए। ● लेखन-मानदेय की व्यवस्था है।

प्रकाशित लेखों पर प्रबुद्ध पाठकों की प्रतिक्रियाओं का स्वागत है। इसी से विमर्श आगे बढ़ेगा।

सितंबर, 1981 से प्रकाशित

दिसंबर – 2016

वर्ष–36, अंक–4, पूर्णांक–416

एक प्रति – ₹ 25/– वार्षिक – ₹ 250/–

संपादक मंडल

डा. शिवकुमार अवस्थी
श्री अशोक मानोरिया
डा. मंगला अनुजा
डा. राकेश पाठक

.....

संपादक

विजयदत्त श्रीधर

.....

प्रकाशक

माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र
संग्रहालय एवं शोध संस्थान
माधवराव सप्रे मार्ग (मेन रोड नं. 3)
भोपाल (म.प्र.) 462 003

.....

मुद्रक

दृष्टि आफसेट, प्रेस काम्पलेक्स
महाराणा प्रताप नगर, जोन–I
भोपाल (म.प्र.) – 462 011

.....

संपर्क

फोन – (0755) 2763406
(0755) 4272590
(0755) 2552868

.....

E-mail

editor.anchalikpatrakar@gmail.com
sapresangrahalaya@yahoo.com

अपनी बात

प्रकृति की बात : समाज के साथ

विज्ञान साक्षरता और संचार विषयक बीते दस बरसों के अनुभवों से सप्रे संग्रहालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रकृति की बात जब तक सीधे समाज से नहीं की जाएगी और समाज को यह अहसास नहीं कराया जाएगा कि प्रकृति के समस्त वरदान जो पानी-पेड़-पहाड़-मिट्टी-खेती-किसानी के रूप में समाज को उपलब्ध हैं, वे समाज की साझा संपत्ति हैं। समाज ही समस्त नैसर्गिक संपदा पर निर्बाध अधिकार रखता है। किंतु यह चेतना जाग्रत करना भी जरूरी है कि जिसका अधिकार होता है उसका यह अपरिहार्य कर्तव्य होता है कि वह नैसर्गिक संपदा के संरक्षण का दायित्व भी निभाए।

हमने सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी की कहानी सुनी है। किन्हीं देवता ने किसी दरिद्र भक्त की भक्ति से प्रसन्न होकर उसे सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी भेंट की। उसे बता भी दिया कि मुर्गी रोज सोने का एक अण्डा दिया करेगी, जिससे उसका और परिवार का भरण-पोषण होता रहे। मुर्गी से रोज सोने का एक अण्डा मिलने लगा जिससे उसका गुजारा भली भाँति होने लगा। कुछ दिन तक तो यह सिलसिला ठीक-ठाक चला परंतु अंततः लालच ने जोर मारा। उसने सोचा कि रोज-रोज सोने के अण्डे का इंतजार करने से बेहतर है एक बार में ही मुर्गी का पेट चीर कर सारे अण्डे हासिल कर लिए जाएँ। उसने मुर्गी का पेट चीर डाला परंतु अण्डे हासिल होना तो दूर वह लालची व्यक्ति सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी से ही हाथ धो बैठा। इस बोध कथा का तात्पर्य यह है कि लालच बुरी बला है और इसका परिणाम अनिवार्यतः विनाश ही होता है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी की ताकत के मद में चूर इंसान भी तो यही कर रहा

है। महात्मा गांधी ने समझाया था कि ''प्रकृति सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है परंतु किसी के लालच की नहीं।'' लेकिन इंसान की फितरत ही ऐसी है कि वह महापुरुषों की सीख पर ध्यान नहीं देता। आज जंगलों के विनाश, रसायनों के बेइंतहा प्रयोग से खेती को जहर बनाना, नदियों को प्रदूषण से बरबाद करना जैसे तरह-तरह के प्रकृति विरोधी अपराधों से इंसान बाज नहीं आता। प्रकृति अपनी तरह से बारम्बार चेतावनियाँ दे रही है। हमारा ऐसा मानना है कि कारपोरेट संचालित आज की दुनिया सयानों की सीख और प्रकृति की चेतावनियों से सबक लेने वाली नहीं है। इसलिए समाज को ही समस्याओं के समाधान और निदान का जिम्मा उठाना होगा। समाज को ही यह संकल्प लेना होगा कि वह प्रकृति के विनाश में किसी भी सूरत में भागीदारी नहीं निभाएगा। वह सर्वजनहिताय प्रकृति के वरदानों से लाभ तो उठाएगा परंतु प्रकृति का शोषण नहीं करेगा। किसी भी रूप में ऐसा कोई काम नहीं करेगा जिससे प्रकृति का हश्र लालच के मारे इंसान और उसके लालच के हाथों तबाह सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी के समान हो।

इसी भावना से सप्रे संग्रहालय ने व्यापक सहभागिता पर आधारित समाज का प्रकृति एजेण्डा तैयार किया है। हमारी कोशिश है कि यह एजेण्डा जन-जन तक पहुँचे और उनके अमल का संकल्प बने। इसके लिए उपदेश नहीं आचरण की जरूरत होगी।

इस अंक में हम बोधगम्य विज्ञान लेखक और संचारक प्रो. डा. कपूरमल जैन का विश्लेषण - 'धरती का बुखार और जलवायु परिवर्तन' प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है कि प्रबुद्ध पाठकों को यह पहल अमल योग्य लगेगी। पाठकों की ओर से प्राप्त होने वाले सुझावों का हम स्वागत करेंगे।

- संपादक

सप्रे संग्रहालय की वेबसाइट

Website :
www.sapresangrahalaya.com
Email :
sapresangrahalaya@yahoo.com

माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल की वेबसाइट में सप्रे संग्रहालय में संग्रहीत प्रचुर संदर्भ सामग्री की सूची, संग्रहालय के प्रकाशनों का संक्षिप्त परिचय, संग्रहालय आने वाले विद्वानों की सम्मतियाँ आदि विवरण सम्मिलित किए गए हैं। इस विपुल संदर्भ सामग्री का लाभ उठाने के इच्छुक शोधकर्त्ता, पत्रकार, लेखक एवं विद्यार्थी वांछित सामग्री की जानकारी सप्रे संग्रहालय की वेबसाइट से प्राप्त कर सकते हैं।

धरती का बुखार और जलवायु परिवर्तन

■ डा. कपूरमल जैन

जलवायु परिवर्तन की समस्या सार्वदेशिक है, विश्वव्यापी है। यह किसी एक की समस्या नहीं, बल्कि सबकी समस्या है। ऐसे में सबको चिंतित होने तथा समाधान में भागीदार बनने की जरूरत है।

आज के औद्योगिक दौर में ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा लगातार बढ़ रही है। इसके कारण धरती के औसत ताप में लगातार वृद्धि हो रही है। यह धरती के बुखार का संकेत है। इससे निकट भविष्य में 'जलवायु परिवर्तन' का खतरा मंडराने लगा है। इसे लेकर विश्व के तमाम देश चिंतित हैं। हमें 'टिकाऊ विकास' के लिए तकनीकी समाधानों के साथ ऐसा कुछ करना होगा जो लोगों की मानसिकता को बदल कर उसे 'ईको-फ्रेंडली' बना सके। इस संबंध में लोगों के मन में विभिन्न प्रश्न उठते हैं। यहाँ हम ऐसे जिज्ञासा भरे प्रश्नों और उनके उत्तरों से रूबरू होते हैं।

क्या धरती को भी बुखार होता है?

हाँ। जब भी हमारे शरीर का ताप बढ़ता है, हम कहते हैं कि हमें बुखार आ गया। ठीक इसी तरह जब धरती का ताप बढ़ता है तो समझो धरती को बुखार आ गया। विज्ञान की भाषा में इसे ग्लोबल वार्मिंग कहते हैं।

धरती को बुखार! सुनने में कुछ अजीब लगता है। कैसे आता है इसे बुखार?

हाँ, यह सच है, लेकिन इसे समझने के लिए पहले धरती के बारे में जानना जरूरी है। यह एकमात्र जीवधारी ग्रह है।

क्या ब्रह्माण्ड में कहीं और जीवन नहीं है?

नहीं। अंतरिक्ष में जीवन के अस्तित्व को खोजने के लिए कई अनुसंधान हुए हैं। लेकिन

अभी तक पृथ्वी के अलावा कहीं भी जीवन के अस्तित्व में होने के प्रमाण नहीं मिले हैं।... हो सकता है कि आगे चल कर हमें ऐसा कोई ग्रह मिल जाए। लेकिन वर्तमान में तो पृथ्वी ही समूचे ब्रह्माण्ड में एकमात्र जीवित ग्रह है। पृथ्वी, सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है तथा स्वयं अपनी धुरी पर भी घूमती है। इसका पर्यावरण अद्‌भुत है। यहाँ कई विस्मयकारी गतिविधियाँ निर्बाध गति से चलती रहती हैं।

यह पर्यावरण क्या है?

पृथ्वी पर हम जो देखते हैं या अनुभव करते हैं, वही हमारे 'व्यक्तिगत पर्यावरण' का निर्माण करता है। इस दृष्टि से हर व्यक्ति का अपना-अपना पर्यावरण होता है। लेकिन पृथ्वी का 'वस्तुपरक पर्यावरण' भी होता है जो व्यक्ति-सापेक्ष नहीं होता। इसे हम देखें या नहीं, अनुभव करें या नहीं, लेकिन यह सदैव विद्यमान रहता है। इस तरह जल, जमीन, जंगल, पदार्थ, नदी, पहाड़, जीव-जंतु, हवा, प्रकाश, ध्वनियाँ और गंध आदि सभी हमारे वस्तुपरक पर्यावरण के अंग हैं। इन सबसे मिल कर ही धरती के पर्यावरण का निर्माण होता है। इस पर्यावरण की विशेषता ही यह है कि इसमें जीवन पनप सकता है तथा बचा भी रह सकता है। लेकिन इस पर्यावरण को बनने में लाखों करोड़ों वर्ष का समय लगा है। एक-कोशीय जीव से आरंभ होते हुए विकसित होते-होते इसकी अंतिम कड़ी के रूप में 'मानव' अवतरित हुआ। इसमें सूर्य की अहम भूमिका रही है।

सूर्य की भूमिका ?

हाँ ! हम जानते हैं कि पृथ्वी सूर्य से प्रकाश के रूप में ऊर्जा प्राप्त कर अपने को पोषित करती है। सूर्य से धरती तक 'लाल से लगा कर बैंगनी' के बीच फैला दृश्य प्रकाश ही पहुँच पाता है। यह प्रकाश का वह भाग है जिसके लिए हमारी आँखें संवेदनशील होती हैं और हम देखने में समर्थ हो पाते हैं। इसमें वह भाग भी शामिल होता है जिससे पेड़-पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया सम्पन्न होती है तथा उनके और हमारे लिए भोजन की व्यवस्था होती है। इसके अलावा सूर्य से मिलने वाले प्रकाश का हमारे जीवन के लिए कई और आवश्यक संसाधनों को तैयार करने तथा उन्हें बनाए रखने की समुचित व्यवस्था बनाने में भी बहुत योगदान रहता है। पृथ्वी की ओर आने वाली ऊर्जा और उससे बाहर निकलने वाली ऊर्जा से जो साम्यावस्था निर्मित होती है उससे धरती पर वह ताप-परास बना रहता है जिससे जैविक क्रियाएँ निर्बाध गति से चलती रहती हैं। इस तरह धरती पर जीवन पनपाने तथा उसके अस्तित्व को बचाए रखने में सूर्य से धरती तक पहुँचने वाली ऊर्जा का बड़ा योगदान रहता है।

सूर्य में ऊर्जा कैसे पैदा होती है?

सूर्य एक ग्रह है। इसका ताप बहुत अधिक है। यही कारण है कि करोड़ों किलोमीटर दूर रहने के बावजूद यह हमारी धरती को गरम रख पाने में समर्थ होता है। हम इसकी गरमी को महसूस करते हैं। पदार्थ सामान्यतः ठोस, द्रव और गैसीय अवस्थाओं में पाया जाता है। हम पानी के इन तीनों रूपों से परिचित हैं। लेकिन अत्यंत उच्च ताप पर यह पदार्थ को बनाने वाले आवेशित कणों में टूट जाता है। इस अवस्था को वैज्ञानिक शब्दावली में 'प्लाज्मा' कहते हैं। सूर्य का पदार्थ प्लाज्मा अवस्था में पाया जाता है। पदार्थ की इस अवस्था में उसके कणों (वैज्ञानिक शब्दावली में इन्हें नाभिक कहते हैं) के बीच लगातार टक्कर होती रहती है। इसके फलस्वरूप सूर्य में उपस्थित हाइड्रोजन जैसे हल्के नाभिकों का संलयन होता है तथा हीलियम जैसे भारी नाभिकों का निर्माण होता है। इस दौरान कुछ द्रव्यमान ऊर्जा में बदल जाता है जो विभिन्न प्रकार के विकिरणों के रूप में मिलता है।

इन विकिरणों में क्या सिर्फ दृश्य प्रकाश ही होता है?

नहीं। इनमें दृश्य प्रकाश के अलावा रेडियो तरंगें, सूक्ष्म यानी माइक्रो तरंगें, अवरक्त यानी ऊष्मीय तरंगें, परा बैंगनी किरणें, एक्स किरणें तथा गामा किरणें भी उत्सर्जित होती हैं।

क्या इन विकिरणों के अलावा कुछ और भी होता है जो पृथ्वी की ओर आता है?

हाँ। सूर्य में बहुत सारी गतिविधियाँ चलती रहती हैं। अतः इन विकिरणों को उत्सर्जित करने के अलावा सूर्य अपने में से अत्यंत ऊर्जावान द्रव्य कणों को भी अंतरिक्ष में उंडेलता रहता है। इसके अलावा अंतरिक्ष से पृथ्वी की ओर आवेशित कणों से बनी 'कॉस्मिक किरणें' भी आती हैं।

सूर्य में आवेशित कण लगातार गति करते रहते हैं और इस तरह ये तो विद्युत धारा बनाते हैं। अगर ऐसा है तो उसका अपना एक चुम्बकीय क्षेत्र भी होता होगा?

हाँ, सही अनुमान है। सूर्य का अपना चुम्बकीय क्षेत्र होता है। विक्षोभ की अवस्था में रहने के कारण कई बार इसमें चुम्बकीय तूफान भी आते रहते हैं। ये पृथ्वी पर अपना प्रभाव डालते हैं।

इसका मतलब तो हुआ कि पृथ्वी की ओर बहुत कुछ आता है। फिर धरती पर तो हमें सिर्फ दृश्य प्रकाश ही मिलता है, ऐसा क्यों?

इसके लिए प्रकृति ने धरती के चारों ओर एक अभेद्य सुरक्षा तंत्र का निर्माण कर रखा है।

सुरक्षा तंत्र?

हाँ, सुरक्षा तंत्र। पृथ्वी का अपना एक अत्यंत मजबूत सुरक्षा तंत्र है।

क्या है यह?

धरती के चारों ओर 'वायुमंडल' से तो आप परिचित हैं ही। लेकिन इसके ठीक ऊपर 'ओजोनमंडल' होता है। इसके ऊपर 'आयनमंडल' तथा सबसे ऊपर बाहरी भाग में 'चुम्बकीयमंडल' अवस्थित रहता है। ये पृथ्वी के जीवधारी स्वरूप को नुकसान पहुँचाने वाले कारणों को रोक देते हैं। इस तरह इन मंडलों के कारण सूर्य से उत्सर्जित ऊर्जा का सिर्फ वही भाग पृथ्वी-सतह तक प्रवेश कर पाता है जो जीवन को पनपाने तथा उसे बनाए रखने के लिए आवश्यक होता है। समय के साथ-साथ आज पृथ्वी पर 'जैव विविधिता' का एक क्लिष्ट जाल विकसित हुआ है।

क्या जैव विविधता के कुछ फायदे भी हैं?

हाँ, अवश्य। इसके कई फायदे हैं। हमारी दादी माँ का 'बटुआ' और जनजातियों तथा आदिवासियों के पास अलिखित 'पारंपरिक बौद्धिक संपदा' इसके प्रमाण हैं। कृषि, स्वास्थ्य, व्यापार, उद्योग आदि क्षेत्रों में इसके लाभ अवर्णनीय हैं। अवकाश और फुरसत के क्षणों में दिल बहलाने और तरोताजा बनाने में जैव विविधता से भरी प्रकृति के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है।

हमारे आसपास मँडराते कौए, गिद्ध जैसे पक्षी और तिलचट्टे, छिपकली, चींटियों जैसे प्राणी सफाई कर्मचारी की तरह काम कर धरती को स्वच्छ रखते हैं।

क्या इसके कुछ और भी लाभ हैं?

हाँ! क्यों नहीं। हमारे जीवन को खतरों से बचाने और खुशहाल बनाने में जैव-विविधता का बहुत बड़ा हाथ है। इसके अंतर्गत आने वाली प्राकृतिक वनस्पति बारिश के पानी के लिए स्पंज जैसा काम करती है। यह जलीय-चक्र को बनाए रखने और सतही-जल पर नियंत्रण प्रदान करती है। सूखे और बाढ़ के समय प्रतिरोधक का कार्य करती है। यह भूमि में नमी, पोषक तत्वों आदि को बनाए रखने में मददगार होती है। यह भूमि कटाव को रोकती है। इससे मिलने वाला कार्बनिक कचरा जीवाणुओं की गतिविधियों को बढ़ाने और जारी रखने में मदद करता है। सच कहा जाए तो इसके कारण ही पृथ्वी के पारस्थितिक तंत्र का विकास हुआ।

पारस्थितिक तंत्र? थोड़ा विस्तार से समझाएँगे?

हमारे शरीर की तरह 'जैव' तथा 'अजैव' प्रकृति के अंग हैं। ये आपस में एक दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। ठीक उसी तरह जिस तरह हमारे शरीर के विभिन्न अंग। हम जानते हैं कि शरीर का कोई भी अंग शरीर से अलग हो कर अपने अस्तित्व को कायम नहीं रख सकता है। यही बात प्रकृति पर भी लागू होती है। प्रकृति में परस्पर निर्भरता का नैसर्गिक नियम काम करता है। ये मिल कर पारस्थितिक तंत्र (ईको सिस्टम) का निर्माण करते हैं। इसकी एक खास बात है कि 'जैविक ताप-परास' के साथ ही धरती का औसत ताप सदैव नियत बना रहता है। और, ताप ही धरती पर जीवन के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए एक अत्यंत संवेदनशील घटक है।

ताप किस तरह संवेदनशील घटक है?

हम जानते हैं कि ताप का जैविक क्रियाओं के संचालन में योगदान रहता है। हमें जब बुखार आता है तब हम देखते हैं कि हमारे शारीरिक ताप में थोड़ी सी ही वृद्धि हमें बेचैन कर देती है। हमारी खाने-पीने की इच्छा मरने लगती है। यही हाल धरती का होता है। स्वस्थ रहने पर ही धरती अपने सामान्य औसत ताप को बनाए रखती है। अगर इसका ताप बढ़ता है तो इसकी गतिविधियाँ प्रभावित होने लगती हैं।

धरती पर औसत ताप कैसे बना रहता है?

पृथ्वी के ताप के निर्धारण में सूर्य से मिलने वाली ऊर्जा, सौर गतिविधियाँ, सूर्य और पृथ्वी की ज्यामिती, वायुमंडलीय संरचना और रासायनिकी, वायुमंडल से सौर विकिरणों का प्रकीर्णन, धरती द्वारा सौर ऊर्जा का अवशोषण एवं ऊष्मीय विकिरणों का उत्सर्जन, वायुमंडल और सागरीय जल के बीच ऊष्मा का विनिमय, ज्वालामुखियों से लावा का उत्सर्जन, जंगलों में लगने वाली आग (दावाग्नि) आदि अहम भूमिका निभाते हैं। लेकिन सामान्यतः यहाँ जिस तरह की प्राकृतिक गतिविधियाँ चलती हैं, उनसे इसका औसत ताप सदैव बना रहता है।

क्या इसे थोड़ा और स्पष्ट करेंगे?

हाँ, क्यों नहीं। हम जानते हैं कि सूर्य की गरमी से तप कर धरती गरम होती है जिसे हम गरमी के दिनों में भरी दोपहर को नंगे पाँव चल कर महसूस कर सकते हैं। वही धरती सूर्य की अनुपस्थिति में यानी रात्रि के समय ठंडी होने लगती है जिससे हमें नंगे पाँव चलने में किसी प्रकार की दिक्कत नहीं होती। लेकिन सूर्य की उपस्थिति में न तो यहाँ पानी उबलता है और न ही इसकी अनुपस्थिति में पानी बरफ बनता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि पृथ्वी का वायुमंडल इसके औसत ताप को बनाए रखने में मदद करता है।

लेकिन धरती पर तो बहुत भिन्नता पाई जाती है, ऐसे में औसत ताप का क्या मायना है?

यह सच है कि धरती बहुत विशाल है। यह अलग-अलग देशों में बँटी हुई है। सबकी भौगोलिक परिस्थितियाँ और जलवायु भी भिन्न-भिन्न है। भारत जैसे देश में तो सभी प्रकार की जलवायु देखने को मिल जाती है। अलग-अलग स्थानों पर सूर्य से मिलने वाले प्रकाश की उपलब्धता भी अलग-अलग होती है। इसके कारण ताप में भी अच्छा खासा अंतर मिलता है। लेकिन स्थानीय स्तर पर भिन्नता के बावजूद पृथ्वी का औसत ताप नियत बना रहता है। किसी भी क्षेत्र के औसत ताप से उसकी जलवायु का निर्धारण होता है। इसी से वहाँ पाई जाने वाली जैव-विविधता का संज्ञान होता है। पृथ्वी के वायुमंडल की इसमें अहम भूमिका है?

पृथ्वी का वायुमंडल यह सब कैसे करता है?

हमारे वायुमंडल में जल-वाष्प, कार्बन डायऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड जैसी गैसें उपस्थित होती हैं। सामान्य स्थिति में पृथ्वी के वायुमंडल में इन गैसों का संघटन ही इस तरह संतुलित अवस्था में बना रहता है कि पृथ्वी को अपने औसत ताप को नियत बनाए रखने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। ये गैसें पृथ्वी से उत्पन्न ऊष्मीय विकिरणों को अंतरिक्ष में जाने से रोकती हैं। यही कारण है कि पृथ्वी का वातावरण रात में सूर्य की अनुपस्थिति के बावजूद बहुत अधिक ठंडा नहीं हो पाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर पृथ्वी हमें 'ग्रीन हाउस' की तरह व्यवहार करते हुए मिलती है। यही कारण है कि इन गैसों को 'ग्रीन हाउस गैसें' कहा जाता है।

ग्रीन हाउस क्या है?

'ग्रीन हाउस' काँच के पैनलों से ढका एक कमरा होता है। काँच की एक विशेषता है कि यह अपने में से प्रकाश को तो गुजरने देता है लेकिन यह ऊष्मीय विकिरणों को गुजरने से रोकता है। जब प्रकाश काँच से गुजर कर कमरे में प्रवेश करता है और वहाँ जिस किसी भी सतह पर आपतित होता है तब उसका कुछ भाग ऊष्मीय तरंगों में रूपान्तरित हो जाता है। ऊष्मीय विकिरणों का यह भाग पुनः बाहर न निकलते हुए कमरे में ही रह जाता है और कमरा गरम होने लगता है। वैसे कमरे में उत्पन्न हुए कुछ ऊष्मीय विकिरणों की हानि भी होती है लेकिन कुछ समय पश्चात साम्यावस्था आ जाती है जिससे वहाँ का ताप लगभग नियत हो जाता है। इस तरह पौध-शालाओं (नर्सरी) में बने ग्रीन हाउस में रखे पौधों की वृद्धि और विकास में बाधा नहीं पड़ती। पौधे हरे होते हैं। अतः इस तरह के गृहों को ग्रीन हाउस (हरित गृह) कहा जाता है।

धरती किस प्रकार ग्रीन हाउस की तरह काम करती है?

जब सूर्य की किरणें धरती की सतह पर पड़ती हैं तो धरती गरम होने लगती है। गरम धरती से ऊष्मीय विकिरण उत्पन्न होते हैं जो अंतरिक्ष की ओर जाने लगते हैं। वायुमंडल में उपस्थित ग्रीन हाउस गैसें धरती से उत्सर्जित ऊष्मीय किरणों के अधिकतर भाग को पुनः धरती की ओर लौटा देती हैं और उन्हें अंतरिक्ष में जाने से रोक देती हैं। इस तरह ये गैसें काँच की तरह व्यवहार करती हैं। इससे धरती एक निश्चित औसत ताप पर गरम बनी रहती है।

क्या इस बात को दैनिक जीवन से जुड़े किसी उदाहरण से समझा जा सकता है?

हाँ, क्यों नहीं। औसत ताप के बने रहने को समझने के लिए हम बहुत ठंडी रात में ठिठुर रहे अपने अनुभवों को भी याद कर सकते हैं। इन क्षणों में ठंड से बचने के लिए हम अपने कमरे में

हीटर की व्यवस्था करते हैं। धीरे-धीरे कमरा गरम होने लगता है। एक समय के बाद उसका गरम होना रुक जाता है क्योंकि जितनी गरमी पैदा हो रही है और जितनी कमरे से बाहर निकलकर जा रही है उसमें संतुलन हो जाता है। इस संतुलन के बने रहने से कमरे का औसत ताप नियत बना रहता है।

क्या धरती का औसत ताप सदैव नियत ही बना रहता है?

नहीं, ऐसा नहीं। इसमें घट-बढ़ होती रहती है। हाल ही के वर्षों में वैज्ञानिकों ने पृथ्वी के औसत ताप में लगातार वृद्धि की प्रवृत्ति को देखा है। इससे ठंडे प्रदेश कुछ गरम और गरम प्रदेश और अधिक गरम होने लगे हैं। पृथ्वी पर मिल रही इस औसत ताप-वृद्धि को वैज्ञानिकों ने 'ग्लोबल वार्मिंग' का नाम दिया है। बोलचाल की भाषा में इसे 'धरती का बुखार' कहते हैं।

क्या इस ग्लोबल वार्मिंग से हमको नुकसान है?

अवश्य है। क्योंकि, पृथ्वी के औसत ताप के बढ़ने से ठंडे ध्रुवीय प्रदेशों से बरफ पिघल कर समुद्र के तल को ऊँचा करती है। और, चूँकि विश्व की अधिकतर आबादी समुद्र के किनारों तथा भूमध्य रेखा के आसपास के सम-शीतोष्ण क्षेत्रों में बसती है, अतः औसत ताप-वृद्धि से यह आबादी बहुत अधिक प्रभावित होने वाली है।

ग्लोबल वार्मिंग का हमें तो पता चला ही नहीं। कब से हो रही है यह?

ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव अत्यंत धीमा प्रभाव है। इसे प्रत्यक्ष महसूस करना कठिन होता है। हाँ, इसके कई परोक्ष प्रभाव अब हमारे सामने आते जा रहे हैं जो इसकी भयावहता की ओर संकेत कर रहे हैं। आज हमारे पास संवेदनशील उपकरण तथा ताप-मापन की व्यवस्था है तथा हमारे पास रेकार्ड उपलब्ध है। लेकिन पहले जब कोई तकनीकी सुविधा उपलब्ध नहीं थी, तब ताप की स्थिति क्या रही होगी, इसे जानने के लिए हमें पुरातत्वीय इतिहास से मदद लेनी पड़ती है।

पुरातत्वीय इतिहास से किस तरह मदद मिलती है?

प्रकृति ने कई नायाब तकनीकें विकसित कर हम सबको चकित किया है। अपने इतिहास को भी रेकार्ड करने के विभिन्न तरीके प्रकृति ने विकसित किए हैं। प्रकृति अपने आसपास घट रही घटनाओं और परिवर्तनों को पेड़ों के तनों में प्रति वर्ष बनने वाली 'ट्री-रिंग', शून्य से नीचे बने रहने वाले क्षेत्रों पर जमी बरफ, पुरातत्वीय खुदाई के दौरान मिलने वाले जीवाश्मों आदि में अंकित करती रहती है। इन सबमें काल-निर्धारण के लिए रेडियोकार्बन के रूप में रेडियोधर्मी घड़ी भी अविराम चलती रहती है। काल निर्धारण और रेकार्ड को पढ़ने के लिए वैज्ञानिकों ने कई तकनीकें विकसित की हैं। इसके लिए उन्हें विशेषज्ञता हासिल करना पड़ती है। इसके बाद पुरातत्वीय खुदाई के दौरान मिलने वाले जीवाश्मों का अध्ययन करना पड़ता है। इस अध्ययन के दौरान उन्हें हजारों-लाखों वर्ष पुराने रेकार्ड मिल जाते हैं।

इस अध्ययन से क्या जानकारी मिली?

इससे हमें पता चला कि पृथ्वी पर वार्मिंग और

कूलिंग के चक्र अपने स्वाभाविक रूप में मिलते रहे हैं। अतः आज मिल रहे परिवर्तन नए नहीं हैं। सूक्ष्मतापूर्वक किए गए अध्ययन के दौरान वैज्ञानिकों ने धरती के औसत ताप और वायुमंडल में उपस्थित कार्बन डायआक्साइड में गहरे रिश्ते को भी देखा। यह गैस धरती के वायुमंडल की एक ऐसी गैस है जो धरती पर जीने लायक ताप को बनाए रखने में अहम भूमिका निभाती है। साथ ही, यह ही वह गैस है जो प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से वनस्पति जगत के निर्माण में भी अपना अहम योगदान देती है। वैज्ञानिकों ने देखा कि पिछले करीब छह लाख पचास हजार सालों में प्राकृतिक रूप से 7 शीत काल आए और पाया कि जब-जब कार्बन डायआक्साइड में वृद्धि हुई है, धरती के औसत ताप में भी वृद्धि हुई है।

इस अध्ययन के दौरान पता चला कि 1750 के बाद अचानक वायुमंडल की संरचना बदलने लगी तथा इसमें कार्बन डाईऑक्साइड की अचानक वृद्धि होने लगी।

तो क्या ग्लोबल वार्मिंग का संबंध कार्बन डायआक्साइड से है?

हाँ, ऐसा ही वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला है। वैसे हम जानते हैं कि हमारे वायुमंडल में जल-वाष्प, कार्बन डायऑक्साइड, नाइट्रोजन के आक्साइड, मिथेन आदि जैसी कई ग्रीन हाउस गैसें विद्यमान हैं। जल-वाष्प वायुमंडल में उपस्थित धूल और अन्य कणों पर संघनित होकर बादलों का निर्माण करती हैं जो सूर्य के प्रकाश को मंद करते हैं तथा धरती से उत्पन्न होने वाले विकिरणों को धरती के वातावण से दूर जाने से भी रोकते हैं। अतः जल-वाष्प का प्रभाव बहुत अधिक होता है। एक आकलन के अनुसार इसका योगदान करीब 95 प्रतिशत है। अन्य गैसों की मात्रा वैसे तो कम होती है लेकिन अपना प्रभाव छोड़ने की दृष्टि से ये भी कम महत्वपूर्ण नहीं होतीं। इस तरह ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव को समझने के लिए वायुमंडल में उपस्थित सभी गैसों पर विचार करना चाहिए। लेकिन उपर्युक्त साक्ष्यों में वैज्ञानिकों को वार्मिंग और कूलिंग के चक्रों के दौरान वायु की संरचना में सिर्फ कार्बन डायऑक्साइड गैस में ही बढ़त-घटक के चक्र मिले। अतः इसको आधार मानते हुए वैज्ञानिकों ने वर्तमान ग्लोबल वार्मिंग का संबंध कार्बन डायआक्साइड के साथ जोड़ा है।

सन 1750 के बाद ऐसा क्या हुआ कि कार्बन डायऑक्साइड में अचानक वृद्धि होने लगी?

ऐसा विज्ञान के विकास और उसके तकनीकी अनुप्रयोगों में अचानक वृद्धि तथा मशीनों के आगमन के कारण हुआ।

विज्ञान का सृजन तो मानव हित में है। फिर, ऐसा कैसे हो सकता है?

हाँ, यह सच है कि विज्ञान का सृजन मानव-हित में हुआ। विज्ञान ने जिज्ञासु मानव के मन में उठ रहे प्रश्नों के जवाब देते हुए जब प्रकृति के रहस्यों को उजागर किया, तब इसको आधार बना कर वैज्ञानिक छोटे-छोटे अनुप्रयोगों को कर सफलता प्राप्त करने लगे। इसके बाद लोक-कल्याण और मानव-जीवन को सहज और खुशहाल बनाने के लिए विज्ञान के कई तकनीकी अनुप्रयोग सामने आए। लेकिन व्यापक परिवर्तन 1750 के बाद तब आए जब भाप के इंजन का आविष्कार हुआ। इस आविष्कार के बाद नयी राहें खुली और हमने मशीनों के युग में प्रवेश किया। इससे मानव-श्रम की बचत होने लगी तथा लोगों के काम सहज होने लगे। अब कम समय में अधिक उत्पाद तैयार होने से लोगों की आवश्यकताओं की आपूर्ति में आसानी होने लगी। उत्पादों को लोगों तक पहुँचाने के लिए आवागमन के 'बैलगाड़ियों' आदि के विकल्प 'मोटर गाड़ियों' के रूप में सामने आने लगे। इनको चलाने के लिए भाप की जरूरत होती है। भाप प्राप्त करने के लिए

जल को गरम करना पड़ता है। जल को गरम करने के लिए सहज ही में उपलब्ध कोयले का उपयोग होने लगा। इसकी सफलता से प्रेरित वैज्ञानिकों ने भाप इंजन की दक्षता को बढ़ाने की दिशा में प्रयास आरंभ किए। परिणामस्वरूप ईंधन के विकल्प पेट्रोल और डीजल सामने आए। इसके बाद पेट्रोल और डीजल इंजन के आविष्कार हुए। औद्योगिकीकरण की रफ्तार बढ़ने लगी। इस बीच बिजली की खोज हुई और वैज्ञानिकों ने शीघ्र ही विद्युत मोटर का आविष्कार कर लिया। विद्युत मोटर के आगमन से औद्योगिक क्षेत्र में नयी क्रांति का सूत्रपात हुआ। इसके बाद हमने मशीन आधारित उद्योगों के दौर में तेजी से प्रवेश किया। अब हमारी निर्भरता बिजली पर बढ़ने लगी।

विद्युत-प्राप्ति के लिए डायनेमो का विकास हुआ। इसमें एक चालक कुंडली को चुम्बकीय क्षेत्र में घुमाया जाता है जिससे यांत्रिक ऊर्जा विद्युत ऊर्जा में बदल जाती है। इस खोज के बाद चालक कुंडली को घुमाने के विभिन्न तरीके खोजे जाने लगे। सबसे आसान तरीका बहता हुआ जल है। इसके अलावा जल प्रवाह को बाँध बना कर रोक कर और जल को नियंत्रित तरीके से गिरा कर भी यांत्रिक ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। इस तरह जल-विद्युत के विचार ने मूर्त रूप लिया। जल-विद्युत का यह अर्थ कदापि नहीं कि जल में बिजली है। वास्तव में जल तो यांत्रिक ऊर्जा प्राप्त करने का स्रोत मात्र है। यांत्रिक ऊर्जा प्राप्त करने के अन्य कई स्रोत भी हो सकते हैं। सौर ऊर्जा और परमाणु ऊर्जा भी ऐसे स्रोत हैं जो जल-विद्युत के साथ ही आज प्रचलन में हैं। कोयले जैसे जीवाश्म ईंधनों से संचालित ताप विद्युत प्लांट भी विकसित किए गए।

इस तरह धीरे-धीरे मानवजन्य औद्योगिक गतिविधियों में तेजी से विस्तार होने लगा। आज मशीनों पर हमारी निर्भरता सर्वविदित है। लेकिन, मशीनों के लिए ईंधन चाहिए। इसके लिए जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता बढ़ने लगी। इनके उपयोग से वायुमंडल में धुएँ और कार्बन डायआक्साइड गैस की उपस्थिति तेजी से बढ़ने लगी। इस तरह प्राकृतिक ग्रीन हाउस प्रभाव पर मानव गतिविधि-जन्य ग्रीन हाउस प्रभाव हावी होने लगा। इसके हावी होने की जानकारी हमें कुछ संकेतों के जरिए मिलने लगी जिससे हमें धरती को बुखार होने का पता चला।

जानकारी मिलने के बाद भी हम संभले क्यों नहीं?

हाँ, इसमें हमारी चूक हुई। हम इसे बहुत साधारण घटना मान रहे थे और सोच रहे थे कि धरती इतनी विशाल है कि इसका कुछ बिगड़ने वाला नहीं है। और, पर्यावरण-प्रदूषण के नाम से जो कुछ हम देख रहे हैं, वह एक क्षणिक प्रभाव ही साबित होगा। धरती इसका मुकाबला कर पाने में सफल होगी। अतः इसे नजरअंदाज करते हुए हमने अपने औद्योगिक विकास की रफ्तार को कम नहीं होने दिया। वैसे बढ़ती जनसंख्या और उसकी माँग को देखते हुए यह आवश्यक भी था। हमने देखा कि हमारी गतिविधियों ने हमें भौतिक तरक्की तो प्रदान की लेकिन धरती के बुखार को और बढ़ा दिया।

यह तो बहुत बुरी बात हुई?

हाँ, लेकिन अब हमें समझ में आ गया है कि विकास के दौरान पर्यावरणी पहलुओं को नजरअंदाज करना बहुत महँगा पड़ा है। हमारे विकास मॉडल की यह धारणा भी गलत साबित हुई है कि धरती बहुत विशाल है तथा हम इसके संसाधनों का जितना चाहें उतना दोहन कर सकते हैं।... आज हमें प्राकृतिक संसाधनों की कमी का अहसास हो गया है और यह भी कि हमारी गतिविधियाँ स्वयं हमारे अस्तित्व के हित में नहीं हैं। इसीलिए अगर हम आज नहीं चेते और पर्यावरण को बचाने तथा धरती के बुखार को कम करने के लिए यथोचित उपचार नहीं किया तो

हमारी भावी पीढ़ियों को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए भारी कीमत चुकानी पड़ेगी।

इसे थोड़ा और स्पष्ट करेंगे?

परिवर्तन तो प्रकृति का नियम है। परिवर्तन यहाँ पल-प्रति-पल होते ही रहते हैं। लेकिन प्राकृतिक परिवर्तन अत्यंत धीमी गति से होते हैं। अतः जीव-जंतुओं को बदलती परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढालने में दिक्कत नहीं होती। लेकिन, आज प्रकृति के क्रियाकलापों में मानवीय हस्तक्षेप बहुत अधिक बढ़ गया है जिससे परिवर्तन की गति बहुत बढ़ गई है। हमारी मशीनें शोर और ऊष्मा के नए स्रोत बनी हैं। शोर और ऊष्मा सभी जीवों के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। साथ ही उद्योगों के जरिए हमारे जीवन में कई ऐसे रसायनों ने प्रवेश किया है जो वायुमंडल की संरचना को तेजी से बदल रहे हैं। इनसे न सिर्फ जल, मिट्टी और वायु ही प्रदूषित हो रहे हैं, वरन कई प्राकृतिक भौतिक क्रियाएँ भी इस तरह बदल रही हैं जिनसे स्थानीय और ग्लोबल स्तर पर धरती का बुखार लगातार बढ़ता जा रहा है।

हमें इसे समझने में इतनी देर क्यों लगी?

हमारी गतिविधियों से जुड़े पर्यावरणी परिवर्तन स्थानीय स्तर पर तो महसूस किए जा सकते हैं लेकिन वृहद स्केल पर नहीं। वैश्विक स्तर पर तो ये अत्यंत धीमी गति से अपना प्रभाव दिखाते हैं।

फिर, कैसे पता चलेगा कि प्रकृति के संचालन में हमारे हस्तक्षेप से दिक्कत आ रही है?

प्रकृति के संचालन में हमारे हस्तक्षेप से दिक्कत आ रही है, इसका पहला अहसास तो हमें जीवाश्म ईंधनों की खपत की दर से चल सकता है। ज्यादा जीवाश्म ईंधनों को खर्च करना यानी ज्यादा धुएँ और गैस को वातावरण में छोड़ना है। शायद हमें ज्ञात न हो, लेकिन यह सच है कि विगत 100 वर्षों में हमने जितने जीवाश्म ईंधनों का इस्तेमाल किया है, वह पिछली कई शताब्दियों में नहीं किया है। इसके अलावा हमें अपने प्रत्येक काम में तेजी और मशीनों के इस्तेमाल से भी अहसास हो सकता है। कोई भी मशीन 100 प्रतिशत दक्षता से काम नहीं करती है। उसको दी गई ऊर्जा का कुछ न कुछ भाग तो ऊष्मा में बदलता ही है। आज व्यक्तियों के पास मोटरबाइक, स्कूटर, कार आदि के रूप में अपने निजी आवागमन के साधन हैं। सड़कें हर समय इन साधनों से पटी रहती हैं। ये सब ऊष्मा के स्रोत हैं। आज हर हाथ में स्मार्ट फोन है जिससे हर व्यक्ति ऊष्मा का एक अतिरिक्त स्रोत बन गया है। हर तरफ हमें वे कारण दिखाई देते हैं जो धरती के बुखार की वृद्धि के लिए जिम्मेदार हैं।

इस तरह अगर हम ध्यान से सोचें तो हम देखते हैं कि हमारे जीवन को बेहतर बनाने और जीवन स्तर को ऊँचा उठाने वाले सभी औद्योगिक क्रियाकलापों में पर्यावरणी दृष्टि का अभाव घातक भी सिद्ध हुआ है।

औद्योगिक क्रियाकलापों के दौरान पर्यावरणी दृष्टि का अभाव किस तरह हुआ?

हम जानते हैं कि जैसे-जैसे प्रकृति के रहस्य खुलने लगे तथा विज्ञान विकसित होने लगा, उसके तकनीकी अनुप्रयोग सामने आने लगे। इसे समझने के लिए हम अपने अनुभव को याद करेंगे। कुल्फी किसे अच्छी नहीं लगती? लेकिन इसे बनाने के लिए बरफ की जरूरत पड़ती है। और, बरफ बनाने के लिए निम्न ताप की जरूरत होती है। अतः निम्न ताप बनाने का जब रहस्य खुला तो ऐसी मशीनें बनने लगीं। शोध के आधार पर निम्न ताप को प्राप्त करने वाले उपकरणों में आरंभ में सल्फर डाईआक्साइड, अमोनिया, क्लोरोफार्म, और कार्बन टेट्राक्लोराइड जैसे रसायन प्रयुक्त

होने लगे। लेकिन बीसवीं सदी के तीसरे और चौथे दशक में मशीन को दक्ष बनाने के लिए प्रचलित रसायनों को नए रसायन सी.एफ.सी. (क्लोरो-फ्लोरो कार्बन) से प्रतिस्थापित किया गया। वैज्ञानिकों का मानना था कि यह सस्ता, बेहतर और सुरक्षित है। सी.एफ.सी. के गुणों को आधार बना कर इसके कई और अनुप्रयोग सामने आए।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान कीटनाशकों के लिए 'ऐरोसॉल' (Aerosol) तैयार करने में इसका उपयोग शुरू हुआ। इसके बाद तो फोम के निर्माण, उच्च-स्तरीय सफाई, एअर-कंडीशनिंग, रेफ्रीजरेटिंग, सौन्दर्य सामग्री, स्प्रे आदि के साथ ही अन्य कई औद्योगिक तथा सामान्य प्रयोजनों में इसके उपयोगों की झड़ी लग गई। इसके साथ ही रासायनिक खादों और कीटनाशकों के रूप में कई नए रसायनों का उत्पादन किया गया जिन्होंने कृषि के क्षेत्र में व्यापक बदलाव किए।

आवागमन और दूरसंचार के क्षेत्रों के अलावा कृषि क्षेत्रों में भी मशीनों ने पैठ बनाना आरंभ किया। औद्योगिक प्रगति और लोगों के जीवन स्तर की दृष्टि से यह भारी सफलता साबित हुई। इसमें अर्थशास्त्रीय दृष्टि तो पुष्ट हुई लेकिन पर्यावरणी दृष्टि लगातार नजरअंदाज होती रही।

यह सच है कि अनुप्रयोगों के समय हमें इनके साइडइफेक्ट की अधिक जानकारी ही नहीं थी। हमें सिर्फ लाभ ही लाभ दिखाई दे रहे थे। लेकिन अब जब हमें गहराई से प्रभावित करने वाले कुछ लक्षण सामने आने लगे हैं तो हम चिंतित होने लगे हैं।

वैसे कई प्राकृतिक कारण भी तो हैं जो पर्यावरणी परिवर्तन के लिए जिम्मेदार होते हैं?

हाँ, अवश्य हैं। भूस्खलन, भूकम्प, बाढ़, सूखा, दावानल आदि जैसी प्रकृतिक आपदाएँ किसी-किसी प्रजाति को समूचा नष्ट कर देते हैं। इतिहास साक्षी है कि करीब 6.4 करोड़ साल पहले विशालकाय खगोलीय पिण्ड और धरती की टक्कर से डायनासोर (छिपकली समुदाय के रिश्तेदार) सदा के लिए नष्ट हो गए। इसी तरह विश्वभर में फैले जीवाश्मों से पता चलता है कि 25 करोड़ वर्ष पूर्व करीब 75 प्रतिशत प्रजातियाँ अचानक लुप्त हो गईं थी। वैज्ञानिकों ने इसका कारण भी प्राकृतिक ही माना है। यह संभवतः खगोलीय पिण्ड और धरती की टक्कर के अतिरिक्त तीव्र ज्वालामुखी और अचानक जलवायु परिवर्तन के कारणों से हुआ है।

कई वनस्पतियों की प्रजातियों के विलुप्तीकरण में स्थानीय पौधों द्वारा वहाँ उपस्थित कीड़ों और रोगों के आक्रमण का सामना न कर पाना होता है। कई बार प्राकृतिक प्रतिस्पर्धा के चलते कमजोर जैव-संरचनाओं वाली प्रजातियाँ गहरे संकट में आ जाती हैं। लेकिन इनमें से कई घटनाओं के पीछे मानवीय गतिविधियों का भी बहुत योगदान होता है।

क्या इसे और स्पष्ट करेंगे?

क्यों नहीं। हमें बुखार होना हमारे बिगड़ते स्वास्थ्य का एक लक्षण है। यह हमें तब होता है

जब हमारे परिवेश में असह्य मौसमी परिवर्तन हो रहे हों या हमारे आसपास जीवाणु, कीटाणु, मच्छर आदि बहुतायत में पनप रहे हों।... जब हमारा प्रतिरक्षा तंत्र इनका मुकाबला नहीं कर पाता तब हम अस्वस्थ महसूस करने लगते हैं। इसके बाद हमारी पाचन क्रिया प्रभावित होने लगती है। और, कई बार तो हमें बुखार तक आ जाता है। वैसे तो धीरे-धीरे शरीर इनका मुकाबला कर स्वस्थ होने का प्रयास करता है, लेकिन स्थिति की गंभीरता को देखते हुए हम बाह्य उपचार भी करते हैं। इसी तरह हम धरती की अवस्था को समझें। आज धरती बीमार है, बुखारग्रस्त है। इसके कुछ लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे हैं।

अगर हम पिछले कुछ दशकों पर ध्यान दें तो हमें धरती पर कई प्राकृतिक चक्र गड़बड़ाते हुए मिल रहे हैं। हजारों वर्षों से सुरक्षित बची रही भोजन शृंखला (फूड-चेन) खतरे में पड़ी दिखने लगी है, जिससे प्राकृतिक जैविक-जाल कमजोर होने लगा है। कई प्रजातियाँ विलुप्त होने लगी हैं तथा कई विलुप्ति के कगार पर पहुँचने लगी हैं। गाँवों में पहले मोर, कौए, चिड़िया, तितलियाँ आदि बहुतायात में नजर आते थे। वे अब गायब होने लगे हैं। वैसे ये सारी समस्या तेजी से बदल रहे पर्यावरण और सामंजस्य स्थापित न कर पाने से जुड़ी हैं।

आज अस्पतालों के सामने बीमारों की लम्बी लम्बी कतारें भी देखी जा रही हैं। भिलाई में स्टील का कारखाना है। वहाँ से हवा में इतनी ऊष्मा उंडेली जाती है कि आसपास का ताप अन्य क्षेत्रों की तुलना में बहुत अधिक रहता है। मैहर में सीमेंट का कारखाना है। एक समय में उनकी चिमनियों से धुँआ निकलता रहता था जो आसपास के परिवेश को दमघोंटू बनाता था और वहाँ साँस लेना दूभर होता था। एक समय इन्दौर की हालत भी बहुत बुरी थी। वहाँ रात को घर लौटते समय चेहरे पर कालिख पुत जाती थी। ये हवा की गुणवत्ता के गिरते स्तर तथा उसमें कार्बन कणों और कार्बन डायऑक्साइड की वृद्धि के संकेत हैं। इससे ग्रीन हाउस प्रभाव तो अपना रंग दिखाता ही है, शुद्ध हवा के अभाव में लोगों में साँस, पेट, किडनी, लीवर, हृदय आदि से जुड़ी बीमारियाँ भी बहुतायत से होने लगी हैं। मौसम में अफलातूनी परिवर्तन नजर आने लगते हैं तथा शुद्ध हवा और जल का संकट गहराता जाता है।

पर्यावरण और प्रदूषण की स्थिति को जानने, समझने और नजर रखने के लिए आज वैज्ञानिक विभिन्न प्रकार के अध्ययनों में जुटे हैं। आज कम्प्यूटर, मोबाइल और इंटरनेट का जमाना है। मोबाइल अथवा स्मार्टफोन के बिना हम घर से बाहर निकलने की कल्पना नहीं कर सकते। इनमें माइक्रोवेव की अहम भूमिका है। इंटरनेट के विस्तार के लिए 'माइक्रोवेव टावर' का निर्माण किया जाता है। एक अध्ययन के दौरान वैज्ञानिकों ने देखा है कि आजकल 'माइक्रोवेव टॉवर' के पास मधुमक्खियाँ फटकती तक नहीं हैं। वे बचने के लिए अपना छत्ता तक छोड़ देती हैं। लेकिन, वे कब तक बची रह सकेंगी? अगर हमने समुचित नियंत्रण नहीं किया तो वे धीरे-धीरे विलुप्त हो जाएँगी। केरल में 'एपीकल्चर' विशेषज्ञों ने पाया है कि आजकल मधुमक्खियों की 'नेविगेशन स्किल' प्रभावित होने लगी हैं। उनके आँकड़े बताते हैं कि पिछले कुछ वर्षों में केरल में इनकी लगभग 60 प्रतिशत आबादी कम हो गई है, जो निश्चित ही इनके बढ़ते विलुप्तीकरण का संकेत है। ऐसे और भी कई उदाहरण हैं। इस तरह आज मानवीय विकास गतिविधियों के कारण धरती पर

जैव विविधता के नष्ट होने का वैश्विक खतरा उत्पन्न हो गया है। अगर वर्तमान दर जारी रही तो आगामी तीन-चार वर्षों में 5 से 15 प्रतिशत तक प्रजातियाँ विलुप्त हो सकती हैं। हाल के वर्षों में उत्तरप्रदेश में गिद्धों और सारसों की संख्या में भारी कमी रेकार्ड की गई है। स्मरणीय है कि सारस यहाँ का 'राज्य पक्षी' है। विश्व की इसकी कुल जनसंख्या का 40 प्रतिशत इसी राज्य में है। कहीं यह विलुप्त न हो जाए, इसे ले कर सरकार और प्रकृतिप्रेमी संगठन चिंतित हैं।

माइक्रोवेव्स के कई और अनुप्रयोग हमारे पास हैं। माइक्रोवेव ओवन हमारे किचन का हिस्सा है। इस तरह आज हमारी धरती पर माइक्रोवेव्स की संख्या बढ़ती जा रही है। इन माइक्रोवेव्स के अलावा आज धरती पर पराबैंगनी किरणों के बढ़ने का खतरा भी मँडराने लगा है। इसमें हमारी सुख-सुविधाओं के लिए किए जा रहे तकनीकी अनुप्रयोगों का योगदान है। इनमें जिन रसायनों का उपयोग होता है वे पृथ्वी के सुरक्षा तंत्र के एक भाग ओजोनमंडल को क्षति पहुँचा रहा है। जैसा हमने ऊपर देखा कि ओजोनमंडल सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों को धरती सतह तक आने से रोकती है। कुछ किरणें धरती तक अवश्य पहुँचती हैं जो कुछ हद तक तो हानिकारक होती हैं लेकिन इनकी उपस्थिति में हमारी त्वचा शरीर की हड्डियों को मजबूत बनाने के लिए परम आवश्यक विटामिन-डी बनाती है। इस विटामिन के अभाव में हड्डियाँ कमजोर रह जाती हैं। इस दृष्टि से इन किरणों का धरती-सतह तक पहुँचना सौभाग्य है। लेकिन वर्तमान में कुछ क्षेत्रों में विशेषकर ध्रुवीय क्षेत्रों के लोगों में चर्म कैंसर और आँखों में तकलीफें बढ़ने लगी हैं। ये उन क्षेत्रों में पराबैंगनी किरणों के उस हिस्से के धरती-सतह तक पहुँचने के संकेत हैं जो खतरनाक है और जिसे ओजोनमंडल रोक रहा था। इनका धरती तक पहुँचना ओजोनमंडल के पतला होने के संकेत है। दूसरे शब्दों में, इसका मतलब पृथ्वी के प्राकृतिक सुरक्षा तंत्र का कमजोर पड़ना है। यह धरती पर जीवन के अस्तित्व लिए बन रहे एक नए खतरे का संकेत है।

प्रदूषित वातावरण में रहने के कारण आज हमारे शरीर का प्रतिरक्षा तंत्र कमजोर पड़ने लगा है। नाना प्रकार की बीमारियों से हम ग्रस्त रहने लगे हैं। वातावरण को समृद्ध कर रही हमारे आसपास रची-बसी जैव विविधता लुप्त होने लगी है। जैविक जाल कमजोर पड़ने लगा है। हमारे आसपास हो रहे परिवर्तनों की तीव्रता और भयंकरता से उत्पन्न बाढ़ और सूखे के हृदय विदारक दृष्य सामने आते रहते हैं। जलवायु परिवर्तन की आहटें सुनाई देने लगी हैं। रासायनिक खादों और कीटनाशकों के बढ़ते प्रयोग से जल और मिट्टी प्रदूषित होने लगे हैं। ये सब वे संकेत है, जो हमें चेतावनी दे रहे हैं और कह रहे हैं कि धरती बीमार है। हमें इनके निहितार्थों को समझना होगा तथा निदान की दिशा में आगे बढ़ना होगा।

इसे कुछ और स्पष्ट करेंगे?

हाँ, क्यों नहीं। जरा सोचिए, जब हम बीमार होते हैं तो क्या करते हैं?... इसी तरह की कोशिश हमें ज्वर से पीड़ित पृथ्वी के लिए भी करना है। हालाँकि धरती हमारी तरह बोल नहीं सकती है। लेकिन जिस तरह हम अपने प्यारे मूक प्राणी के मन की बात उससे मिलने वाले संकेतों से समझ लेते हैं, उसी तरह से हमें हमारी प्यारी मूक धरती की बात को भी समझना होगा।

वैज्ञानिकों ने पृथ्वी से मिल रहे संकेतों को समझकर हमें आगाह किया है। लेकिन जन-सामान्य ने इसे उतनी गहराई से महसूस नहीं किया है जितना करना चाहिए। लोगों को जब तक यह समझ में नहीं आएगा कि धरती मुसीबत में है, तब तक इसे बचाने के प्रयास सफल नहीं हो सकेंगे। लोगों को यह बात गले उतारना चाहिए कि धरती उनकी माँ है। अगर यह स्वस्थ नहीं

रहेगी तब हम कैसे स्वस्थ रह पाएँगे? हमें लोगों को समझाना होगा कि सदियों से अस्तित्व में रह रही कई प्रजातियाँ अपने अस्तित्व को बचाए रखने में क्यों सफल नहीं हो पा रही हैं? कई जीवन को संचालित करने वाली प्रणालियाँ अभी क्यों ध्वस्त होने लगी हैं?

इसके लिए क्या करें?

इसके लिए पहले हमें स्वयं को गहराई में जा कर तार्किक तरीके से समस्या को समझना होगा। इसके लिए हमें औद्योगिक क्रांति के बाद के परिदृश्य पर नजर डालनी होगी जिसमें 'अर्थ' हावी हुआ।

आप कहना क्या चाह रहे हैं?

ठीक है, मैं स्पष्ट करता हूँ। जब विज्ञान के तकनीकी अनुप्रयोगों में लोगों को अपनी आर्थिक प्रगति के सूत्र नजर आए तब उन्होंने इसमें आशा की एक किरण देखी कि इससे उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में मदद मिलेगी क्योंकि बिना 'अर्थ' के इसकी संभावना नगण्य होती है। इस विचार ने विज्ञान और उसके अनुप्रयोगों के आर्थिक पक्ष को उजागर किया और लोगों ने इसका तहेदिल से स्वागत किया। उसके बाद एकतरफा भौतिक विकास की योजनाएँ बनने लगीं तथा इनके क्रियान्वयन से तत्काल लाभ भी नजर आने लगे। जनसंख्या में वृद्धि के साथ लोगों की आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं। इसकी पूर्ति में मशीनों और उद्योगों को उपयुक्त पाया गया। नवाचार होने लगे जिससे औद्योगिक विस्तार में तेजी आने लगी। ऊर्जा-पूर्ति के लिए बाँध बनने लगे। कोयला और जीवाश्म ईंधनों से चलने वाले थर्मल पावर स्टेशन बनने लगे। लेकिन इस विस्तार के काल में हमारा ध्यान इनसे पैदा होने वाले प्रदूषण पर नहीं गया। हम यह मान कर चले कि धरती इतनी विशाल है कि इसका हमारे पर्यावरण पर कोई विपरीत प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। अतः औद्योगिक प्रगति दिन दूनी रात चौगुनी रफ्तार से बढ़ने लगी।

अपने आराम के लिए तथा अपने काम को आसान करने के लिए हमने प्रौद्योगिकियों को अपनाया और विस्तार किया। यह सचमुच ही आनंददायक अनुभव रहा। आरंभ में हमें इसके साइड-इफेक्ट्स का अंदाज ही नहीं था। अतः हम इसके एक तरफा विस्तार में लगे रहे और पर्यावरणी पहलू पर विचार किए बिना प्रौद्योगिकी को अपनाते रहे। इस कारण कई गतिविधियाँ एक साथ होने लगीं। इनमें जंगलों का कटना, मशीनीकरण का होना, नदियों के जल को रोक कर बाँध बनाना, काम को आसान बनाने के लिए कम्प्यूटर-आधारित तकनीकों को अपनाना आदि प्रमुख रहे। स्टील, सीमेंट, कागज, इलेक्ट्रॉनिक जैसे कई नए उद्योग स्थापित हुए। उद्योगों को विद्युत की बहुत आवश्यकता होती है। वर्तमान में विद्युत ऊर्जा पाने के पारम्परिक तरीके 'जीवाश्म ईंधनों', 'बाँधों' और 'नाभिकीय ऊर्जा' पर आधारित हैं। इन सबमें पर्यावरण प्रदूषण के कारण छिपे हुए हैं।

ये कारण किस तरह छिपे हैं?

विद्युत उत्पादन, आवागमन के साधन आदि में जिन ईंधनों का प्रयोग होता है वे वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों में वृद्धि करते हैं। 'जीवाश्म ईंधन' कार्बन डायआक्साइड के स्रोत हैं। जल विद्युत उत्पादन के लिए बनाए गए बाँधों में गरमी के दिनों में जो जल-भरी जगह खाली हो जाती है, वहाँ वनस्पति उग जाती है जो बारिश के दिनों में डूब जाती है। यह जल में डूबी हुई वनस्पति ही 'मिथेन' का स्रोत बन जाती है। ये दोनों ही गैसें वे ग्रीन हाउस गैसें हैं जिनका संबंध 'ग्लोबल वार्मिंग' के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। इसके अलावा कई और प्रकार की ग्रीन हाउस गैसें भी हैं तथा इनके वातावरण में उपस्थित होने के कई अन्य स्रोत भी औद्योगिक विस्तार के साथ आए हैं। ऐसे में धरती का बुखार घटने की बजाए लगातार

बढ़ता जा रहा है। इससे सबसे बड़ा खतरा निकट भविष्य में एक बड़े जलवायु परिवर्तन के रूप में संभावित है।

क्या ग्लोबल वार्मिंग से जलवायु में व्यापक परिवर्तन भी हो सकता है?

हाँ, अवश्य। देखिए, 'ग्लोबल वार्मिंग' जमीन से नमी कम कर उसे शुष्क बनाती है तथा जल-वाष्प को वायुमंडल में भेज देती है। समुद्र-तल से यह अत्यधिक मात्रा में जल-वाष्प को वायुमंडल में पहुँचाकर वहाँ बादल बनने की प्रक्रिया में तेजी ला देती है। जब बादलों के प्रवाह की दिशा में अनिश्चितता आ जाती है तब कुछ क्षेत्र तो भारी वर्षा से परेशान हो उठते हैं तो कुछ वर्षा की बाट जोहते ही रह जाते हैं। परिणामस्वरूप धरती पर बाढ़ और सूखे दोनों की ही स्थितियाँ बन जाती हैं।

ग्लोबल वार्मिंग से समुद्र के जिस भाग से वाष्पीकरण ज्यादा होगा, वहाँ नमक की वजह से पानी गाढ़ा और भारी हो कर नीचे की ओर प्रवाहित होगा तथा उसका स्थान हल्का-जल लेने लगेगा। धीरे-धीरे समुद्र का सारा जल गाढ़े नमक के घोल में रूपांतरित होने से पेय जल का संकट उपस्थित हो सकता है। इससे धरती पर जलवायु और मानसून को प्रभावित करने वाली समुद्र में चल रही संवाहन धाराएँ टूटेंगी जिससे मौसम में भारी उतार-चढ़ाव मिलने लगेंगे। अगर ग्लोबल वार्मिंग की वृद्धि दर में रोक नहीं लगी तो हो सकता है कि धरती के विभिन्न भागों में 'चरम मौसमी घटनाएँ' बहुत आम हो जाएँ।

ग्लोबल वार्मिंग का कुप्रभाव उन फसलों पर भी पड़ सकता है जो ताप के प्रति अधिक संवेदनशील हैं। इससे सोयाबीन, मटर और टमाटर जैसे कृषि-उत्पादों की मात्रा और गुणवत्ता में कमी हो सकती है। उसके साथ ही जलीय-वनस्पतियों और जलीय-जीवों के अस्तित्व को भी खतरा हो सकता है। ये सब वे भविष्यवाणियाँ हैं जो हमें भयाक्रांत कर रही हैं।

किस आधार पर इतनी भयावह भविष्यवाणियाँ की जा रही हैं?

वैज्ञानिकों ने ग्लोबल वार्मिंग के कारण उत्पन्न होने वाले प्रभावों का अध्ययन किया तथा कम्प्यूटर मॉडल विकसित किए। इनके आधार पर जलवायु में व्यापक परिवर्तन की संभावना व्यक्त की है। उनकी इस भविष्यवाणी को समर्थन मिलना पिछले दशक से तब शुरू हुआ जब अनियमित वर्षा, सर्वाधिक गर्म ग्रीष्म, ठंडे क्षेत्रों में लू, ग्लेशियरों का पिघलाव और ऊँची उठती समुद्री सतहें, कई क्षेत्रों में कृषि उत्पादों में भारी कमी, कहीं बाढ़ तो कहीं सूखे की स्थिति, कई जैव-प्रजातियों के विलुप्तीकरण के खतरे, समुद्री-तूफानों और दावाग्नि की फ्रीक्वेंसी में अप्रत्याशित वृद्धि आदि के रूप में कई संकेत मिले।

क्या हैं वे संकेत?

मुंबई में जुलाई 2005 को रेकार्ड 944 मिमी बारिश दर्ज की गई। इसके बाद भोपाल, सूरत, बाड़मेर, श्रीनगर आदि शहरों में भयंकर बाढ़ के दृश्य उपस्थित हुए। हाल ही में दिसम्बर 2015 में चेन्नै में हुई भारी बारिश ने सबको चिंता में डाल दिया। बिहार की 2005, 2006 और 2008 की अतिवर्षा और असम में 2006 की अल्पवर्षा ने भी हमें चिंता में डाला है। बंगाल की खाड़ी के जल स्तर के बढ़ने से सुंदरवन का करीब 100 वर्ग किलोमीटर का इलाका और उसके लोहामारा और सुपेरडांगा द्वीप डूब चुके हैं। सन 2008 में यूरोप में जो भयंकर लू चली, उससे काफी जानें गई। उत्तरी ध्रुव के बर्फीले रेगिस्तान में बरफ की चट्टानों के टूटने की खबर आई। कई क्षेत्रों में फसलें समय से पहले तैयार होने लगीं जिससे उत्पादकता में भारी कमी रेकार्ड की गई। स्कॉटलैंड में पेड़ों पर नई पत्तियाँ जल्दी आने लगीं। 1940 की तुलना में अनेक वनस्पतियों में तीन सप्ताह से पहले ही नई

पत्तियाँ आने लगीं। पशु-पक्षियों के दैनिक क्रियाकलापों और जीवन चक्र में बदलाव देखे जाने लगे। यूरोप में तितलियों की 25 प्रतिशत प्रजातियाँ उत्तर की ओर पलायन कर चुकी हैं। पलायन अभी रुका नहीं है। पहले उत्तर का यह स्थान इतना ठंडा रहा है जहाँ इन तितलियों का पनपना और रह पाना संभव नहीं था। लेकिन अब यह बात नहीं रही। अब हम अपने आसपास नजर डालें। हमें अपना परिदृश्य बहुत बदला बदला नजर आने लगा है। आज कई स्थानों पर दिन और रात के अधिकतम और न्यूनतम तापों में अंतर तथा वर्षा के पैटर्न में अंतर दिखलाई देने लगे हैं। बारिश के दिनों में भी हम अक्सर ऐसे दृश्य देखते हैं जिनमें कभी एक घंटे में महीने भर की बारिश का कोटा तो कभी एक-एक महीने तक बारिश नदारत रहती है। इससे कृषि पर बुरा प्रभाव पड़ता है। गरमी के दिनों में ठंड और ठंड के दिनों में गरमी भी अब आम बात है। सब कुछ अनिर्धारित और अकल्पनीय, उम्मीद से बिल्कुल अलग हो रहा है। ऐसे हालात में पूर्वानुमान काम नहीं करते और किसानों को तकलीफों का सामना करना पड़ता है।

क्या कुछ और भी संकेत हैं?

हाँ, अवश्य हैं। हमारे दैनिक जीवन में और औद्योगिक उत्पादों के निर्माण में रसायनों का अत्यधिक प्रयोग होने लगा है। समुचित सुरक्षा प्रबंध के अभाव में ये लीक होते रहते हैं। इससे ओजोन मंडल के रूप में प्रकृति प्रदत्त धरती के सुरक्षा कवच में छिद्र दिखाई देने लगे हैं।

सुरक्षा कवच में छिद्र की बात समझ में नहीं आई। क्या इसे समझाएँगे?

हमने अपनी सुख-सुविधा के लिए कई रसायनों का निर्माण किया। इनमें से कई लीक हो कर वायुमंडल में पहुँचकर वायु की संरचना को बिगाड़ने लगे। इनकी उपस्थिति में ओजोन के अणु अधिक मात्रा में टूटने लगे जिससे कई स्थानों पर ओजोन मंडल की परत बहुत पतली हो रही है। लगता है मानो इसमें सेंधमारी हो रही हो या इसमें कोई छिद्र हो गया हो। वर्तमान में इस छिद्र में से पार होकर पराबैंगनी किरणें धरती तक पहुँचने में कामयाब हो रही हैं। इस कारण उन स्थानों पर रहने वाले लोगों में त्वचा कैंसर होने की शिकायतें बढ़ने लगीं। इसके साथ ही लोगों की आँख खराब होने के संकेत भी मिलने लगे।

इसका मतलब तो यह हुआ कि धरती का बुखार आने से बहुत बड़ा खतरा पैदा होने जा रहा है?

हाँ। निश्चित ही। ऐसा वैज्ञानिकों का मानना है। लेकिन आमजन के लिए इसे महसूस कर पाना आसान नहीं है। आमजन 'लोकल वार्मिंग' के प्रभाव को तो आसानी से महसूस करते हैं क्योंकि ये तेजी से घटती है और स्थानीय स्तर पर अपना प्रभाव डालती है। लोग सक्रिय होते हैं लेकिन धीरे-धीरे भूल जाते हैं क्योंकि ये अल्प-जीवी होते हैं। इसके विपरीत 'ग्लोबल वार्मिंग' (धरती का बुखार) के प्रभाव को लोग आसानी से महसूस नहीं कर पाते हैं। यह प्रभाव अत्यंत धीमी गति से आगे बढ़ता है लेकिन 'जलवायु परिवर्तन' जैसा दीर्घकालीन प्रभाव छोड़ता है। जब तक हम अपनी वर्तमान स्थिति और समस्याओं पर गंभीरता से विचार नहीं करेंगे तब तक समस्या के समाधान की दिशा में प्रभावी तरीके से अग्रसर नहीं हो सकते।

क्या है हमारी वर्तमान स्थिति?

उद्योगीकरण के साथ मास-प्रोडक्शन शुरू हुआ। इसके लिए प्राकृतिक संसाधनों का बेतहाशा और अनियंत्रित दोहन होने लगा। विज्ञान ने प्रकृति के और गहरे रहस्यों को उजागर किया जिससे आज की कम्प्यूटर आधारित क्रांतिकारी टेक्नोलॉजी आई। इससे आटोमेशन

का नया दौर आरंभ हुआ। धीरे-धीरे स्वार्थ, लालच और गलाकाट प्रतिस्पर्धा की बढ़ती भावना के साथ बाजारू ताकतों का विस्तार हुआ। इन ताकतों ने सारे सूत्रों को अपने नियंत्रण में ले लिया। चूँकि बाजारू ताकतों को सिर्फ 'पॉवर' और 'पैसा' ही दिखाई देता है, अतः इन्हें पाने के लिए किसी भी हद तक जाने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती। हालाँकि नैतिक मूल्यों की बात तो होती है लेकिन ये बंधनकारी नहीं होते, अतः इन्हें कोई मानता नहीं। लोगों के आंतरिक विकास के अभाव में आज हमारा समूचा ग्रह बीमार नजर आने लगा है। आज धरती को बुखार है तो इसमें निश्चित ही हमारे द्वारा अपनाए गए विकास मॉडल का योगदान है।

विकास मॉडल का योगदान किस तरह है?

देखिए, वर्तमान में विकास के जिस मॉडल को हमने अपनाया है, उसमें हम मान कर चले कि ''प्रकृति में असीम संसाधन हैं। इसलिए हम प्राकृतिक संसाधनों का बेतहाशा दोहन कर सकते हैं।'' इसे आधार मानकर हम तेज आर्थिक विकास करने लगे। इस दौरान लोगों में भौतिक सम्पन्नता की चाह बढ़ने तथा उपभोक्तावादी संस्कृति पनपने लगी। इससे अधिकतर लोगों की मानसिकता लालची, स्वार्थी, संवेदनहीन और स्व-केंद्रित होने लगी। कहते हैं कि धरती सबका पेट पाल सकती है लेकिन एक लालची का नहीं। अजः आज समस्या इस विकास मॉडल से जन्मी दूषित मानसिकता से है। इसके कारण समाज में मूल्यों के स्थान पर पूँजी हावी होने लगी। व्यापारिक दृष्टि से लाभकारी 'उपयोग करो और फेंको' की संस्कृति का पर्यावरण पर नकारात्मक असर दिखने लगा।

बेतहाशा दोहन ने प्राकृतिक संसाधनों की असीमितता के मिथक को तोड़ दिया। इस तरह हमारे विकास के मॉडल का आधार ही गलत था। हमारा आधार पर्यावरण की दृष्टि से ठीक नहीं था। हमारे विकास में विद्युत की अहम भूमिका है।

तो क्या हम विकास के इस मॉडल को छोड़ दें?

नहीं। यह सच है कि बेहतर समाज के निर्माण के लिए भौतिक विकास जरूरी है। विज्ञान ने अपनी महती भूमिका निभाते हुए समाज के विकास के लिए औद्योगिकीकरण का रास्ता दिखाया है। लेकिन विज्ञान ने पर्यावरणी नुकसान की ओर भी इशारा किया था जिसे आर्थिक पहलू ने जानबूझकर नजरअंदाज होने दिया। हम यहाँ यह याद नहीं रख सके कि बिना ऊर्जा के औद्योगिक विकास संभव नहीं है और पर्यावरण को नुकसान पहुँचाए बिना ऊर्जा उत्पादन संभव नहीं है। इसमें संतुलन न रखने ने ही आज की समस्या को जन्म दिया है। हाल ही में दिल्ली के गैस चैम्बर बनने की खबर आई है। इसके लिए पंजाब में अपनाई जा रही कृषि पद्धति को दोषी ठहराया गया है। इसमें किसानों को खेतों में खड़े डंठलों को जलाना पड़ता है क्योंकि उन्हें फसल बेचने के बाद मात्र 15 दिन मिलते हैं जिसमें उन्हें जमीन तैयार कर अगली फसल के लिए बुआई भी करनी होती है। अतः खेतों में खड़े डंठलों को जलाना उनकी मजबूरी होती है। हवा के रुख ने इस बार दिल्ली को चपेट में ले लिया।

यह तो एक पहलू हुआ। इसमें हमें किसानों की मजबूरी नजर आती है। अब थोड़ा दूसरे पहलू पर विचार करें। यह मशीनों के बढ़ते उपयोग से आई है। आज कम्बाइन हारवेस्टर से फसलों की कटाई होती है। ये मशीनें करीब एक फीट डंठल खेत में ही छोड़ देती हैं। खेत से उन्हें हटाना काफी मेहनत और लागत का काम है। अतः आज उत्पन्न हुई इस पर्यावरणी समस्या के कारणों में मशीन के रूप में बेहतर विकल्प का न मिलना भी है।

क्या शहरी विकास भी ग्लोबल वार्मिंग का कारण है?

हाँ। आज शहरी आबादी में तेजी से वृद्धि हो

रही है। चारों ओर अधोसंरचना का विकास हो रहा है। विश्व में घनी आबादी वाले अधिकांश महानगर मानवीय गतिविधियों और भू-उपयोग में बदलावों के कारण 'ऊष्मा के टापू' बनते जा रहे हैं जिससे लोकल वार्मिंग का प्रभाव नजर आने लगा है। शहरों के ऊष्मा टापू बनने से स्थानीय स्तर पर हवा की गुणवत्ता और पानी की उपलब्धता बहुत हद तक प्रभावित होती है। ताप-वृद्धि-जन्य प्रभाव स्थानीय स्तर पर कई और समस्याओं को जन्म देते हैं जिनमें जैव-विविधता में कमी का होना, विभिन्न जैव प्रजातियों का पलायन, बैक्टीरिया-जन्य विभिन्न बीमारियों का बढ़ना, लोगों में चिड़चिड़ाहट और आक्रामकता का बढ़ना, स्थानीय मौसम का प्रभावित होना आदि प्रमुख हैं।

शहरों में सीमेंट-कांक्रीट की सड़कों और भवनों की छतों और दीवारों के कारण सूर्य के प्रकाश का परावर्तित होना कम तथा सोखना अधिक होता है जिससे दिन अधिक गरम हो जाते हैं। लेकिन रात को ये जल्दी ठंडे हो जाते हैं जिससे शहरों में दिन और रात के ताप में बहुत अंतर मिलता है। इनके अलावा मानवीय गतिविधियों से जुड़े कई कारण ऐसे भी हैं जिनसे शहरी क्षेत्रों का वातावरण प्रदूषित रहता है और हवा में छोटे-छोटे कण तैरते रहते हैं। हवा में उपस्थित छोटे-छोटे कणों के रूप में उपस्थित प्रदूषक स्वास्थ्य पर तो बुरा प्रभाव डालते ही हैं लेकिन ये बादल निर्माण में भी अपना योगदान देते हैं। बादलों और ग्रीन हाउस गैसों की उपस्थिति वायुमंडल के विकिरणीय गुणों को बदल देती है। दिन में बादल-रहित और रात में बादल-सहित आकाश दिन और रात दोनों को बेहद गरम कर देते हैं जिससे लोगों में बेचैनी बढ़ जाती है। शहरों में बहुमंजली इमारतों की उपस्थिति हवा के प्रवाह की दिशा को बदलने में भी योगदान देती हैं। इन सबके कारण शहर के विभिन्न हिस्सों का ताप और शहर में ताप-वितरण प्रभावित होता है। कई बार ये चरम-मौसमी (एक्स्ट्रीम वेदर) घटनाओं की आवश्यक शर्तों को पूरा करने में भूमिका निभाते हैं जिससे शहरी क्षेत्र इनके आसान शिकार हो जाते हैं। लोकल वार्मिंग से जुड़े ये सभी तथ्य पर्यावरण को प्रभावित कर चरम-मौसमी घटनाओं के घटित होने में न्यूनाधिक योगदान देते हैं। तेज बारिश के समय खराब नगरीय नियोजन तथा लोगों का 'स्वच्छता' के प्रति उदासीन रवैया आपदा को और गहरा देता है। इसमें पॉलीथिन की थैलियों के द्वारा जल-निकासी हेतु बनी नालियों का बाधित हो जाना प्रमुख है।

लोगों की आवश्यकताएँ और मानसिकता बदल रही है। भवन निर्माण हो रहा है। दूरसंचार, आवागमन के साधनों में विस्तार हो रहा है। ए.सी. कमरे की ऊष्मा को बाहर वातावरण में उंडेल रहे हैं। मोबाइल हाथ में होने से वह ऊष्मा उत्सर्जन का अतिरिक्त स्रोत बन रहा है। इंटरनेट, कम्प्यूटर, लेपटॉप आदि के बिना काम चलता नहीं।

शहरों में हरियाली का क्षेत्र लगातार सिमट रहा है। हरियाली की कमी से प्राकृतिक नमी और ठंडक में भारी कमी होने लगी है। पक्के मकान गर्मी में गरम और ठंड में ठंडे रहते हैं। इससे एयर कंडीशनर (ए.सी.) और रूम हीटर का उपयोग बढ़ रहा है। हरियाली के अभाव में वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड जैसी ग्रीन हाउस गैसों में लगातार वृद्धि हो रही है।

शहरों में पानी के जमीन के अंदर उतरने की जगह नहीं बची है। नालों और जल-भराव वाली जगहों के बढ़ते अतिक्रमण ने समस्या को और गहरा दिया है। शहरों में निकासी की समुचित व्यवस्था न होने या रखरखाव के अभाव में थोड़ी-सी बारिश भी कहर ढाने लगती है। जल संग्रहण की व्यवस्था के अभाव में बारिश का पानी संग्रहीत होने की बजाए बह जाता है और गर्मी के दिनों में लोगों को पानी की किल्लत का सामना करना पड़ता है। आवागमन और संचार क्षेत्रों में आई तकनीकी क्रांतियों के कारण समूचा विश्व अतिरिक्त ऊष्मा को क्षेत्र के रूप में बदल रहा है। पिछले कुछ दशकों से ग्लोबल वार्मिंग का नया

प्रभाव चिंताजनक स्वरूप में दिखाई देने लगा है।

ग्लोबल वार्मिंग पर विभिन्न देशों का नजरिया क्या है?

ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव वे देश अधिक महसूस करते हैं जो भूमध्य रेखा के आसपास स्थित हैं। लेकिन ध्रुवों पास स्थित आबादियों के लिए यह खुशनुमा वातावरण का निर्माण करती है। अतः सूमचे ग्लोब में इस प्रभाव को अलग-अलग तरीके से अनुभव किया जा रहा है। धरती के कई भागों में अत्यंत बड़े-बड़े ग्लेशियर हैं। गर्मी के दिनों में इनके कुछ भाग पिघलकर विश्व की कई नदियों और अन्य जल स्रोतों को पानी उपलब्ध कराते हैं। लेकिन, शीत काल में ये ग्लेशियर पुनः अपनी पूर्वावस्था में लौट आते हैं। ये ग्लेशियर ताप परिवर्तन के प्रति अति संवेदनशील होते हैं। ग्लोबल वार्मिंग की वजह से ग्लेशियर के पिघलने की दर में तेजी हो सकती है जिससे नदियों में बाढ़ और समुद्र के जल स्तर में अनसोचा इजाफा हो सकता है। अगर ऐसा होता है तो समुद्र तटों पर बसी आबादियाँ खतरे में आ सकती हैं और उन्हें पलायन के लिए मजबूर होना पड़ सकता है। एक अनुमान के अनुसार जल स्तर के बढ़ने से करीब 5,76,400 हेक्टेयर भूमि जलमग्न होगी और करीब 71 लाख लोग विस्थापित होंगे।

भारत निचले अक्षांतर वाला कटिबंधी देश है। इस दृष्टि से हमारे देश की स्थिति बहुत नाजुक है। अगर ग्लेशियर पिघलेंगे तो हमारे देश का सुंदरवन क्षेत्र और बांग्लादेश के तटीय इलाके बहुत प्रभावित होंगे। हमारे देश का ओडिशा से लगा समुद्री तट भी अत्यंत संवेदनशील है। एक अनुमान के अनुसार अगर यहाँ एक मीटर की भी जल-वृद्धि होती है तो यहाँ का करीब 800 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र डूब में आ जाएगा। हिमालय के ग्लेशियर एशिया की गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र, सलवीन, मिकोरा, यंगद्ज और हुआगदू नदियों के लिए जल उपलब्ध कराते हैं। ग्लेशियर की 10 प्रतिशत बरफ पिघलने से एशिया में पहले बाढ़ आएगी। चूँकि जल सौर-विकिरणों को सोख लेता है जबकि बर्फ उन्हें परावर्तित कर देता है, अतः जल की बढ़ती उपस्थिति में बर्फ के पिघलने की दर में तेजी आएगी। जब सारी बर्फ पिघल जाएगी तब नदियाँ सूखने लगेंगी और आबादी को गहरे जल संकट का सामना करना पड़ेगा। वैसे कुछ घटनाएँ दिखाती हैं कि प्रकृति अपने को संरक्षित और संतुलित रखने के प्रयास में भी जुटी हुई है। प्रकृति की ओर से ऐसा प्रयास सन 2008 में तब दिखा जब कुल्लू और लाहौलमिले की ऊँची पहाड़ियों पर 10-15 घनफीट बरफ गिरी। आशान्वित वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि इससे ग्लेशियरों का सिकुड़ना रुकेगा। कुल्लू के जी.वी. पंत हिमालयीन पर्यावरण संस्थान के डा. कुनियाल ने इसे ग्लेशियरों के लिए नई संजीवनी माना है। अगर आगे भी ऐसा होता है तो निश्चित ही हमारे लिए यह प्रकृति का वरदान साबित होगा और हमें सँभलने का कुछ अधिक मौका मिल सकेगा।

समाधान के रास्ते क्या हैं?

अब हमें इसका संज्ञान हो गया है कि हमारी धरती लगातार गरम होती जा रही है। इसके गरम होने से इसके दैहिक-ताप-परास की सीमाएँ प्रभावित होने लगी हैं। यह खतरे की घंटी है और हमारा अस्तित्व संकट में नजर आने लगा है। ऐसे में हम क्या करें? या तो हम प्रौद्योगिकियों में प्रयुक्त कम ऊष्मा उत्पादन करने वाले स्रोतों से एक-एक कर बदल दें या अवांछित अत्यधिक ऊष्मा उत्पादित कर रहे स्रोतों या धरती को गरम करने में सहायक ग्रीन हाउस गैसों की उत्पादक इकाइयों को कम करते चलें तथा तथा ग्रीन टेक्नोलॉजी को बढ़ावा देते चलें। आज 'ग्रीन' एक रूपक है जिसका अर्थ पर्यावरण-हितैषी कदमों से लिया जाता है। अतः ऐसी टेक्नोलॉजी जो पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाए, ग्रीन टेक्नोलॉजी कहलाती हैं। इसके साथ ही पर्यावरण

के स्वास्थ्य को लौटाने का एक और तरीका उपभोक्तावादी विलासितापूर्ण जीवन-शैली में ऐसा परिवर्तन लाना है जिससे धरती को गरम करने में भूमिका को न्यूनतम किया जा सके।

क्या इस दिशा में वैश्विक प्रयास हुए हैं?

हाँ। हाल ही में संयुक्त राष्ट्र संघ ने 'दी युनाइटेड नेशंस फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लायमेट चैंज' के तत्वावधान में दिसम्बर 2015 में पेरिस में सम्पन्न हुए सम्मेलन में वायुमंडल में 'कार्बन' वृद्धि के बड़े स्रोतों को सीमित करने हेतु कई देशों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं। बावजूद इसके निर्धारित समय-सीमा में इस पर अमल करना अत्यंत चुनौतीपूर्ण है। इसमें नीति विषयक बदलावों के साथ ही वर्तमान में प्रचलित प्रौद्योगिकियों के स्थान पर ऐसी प्रौद्योगिकियों को अपनाना जरूरी है जिनसे तैयार होने वाले उत्पाद अपने निर्माण, सम्पूर्ण जीवनकाल और उसके बाद अपशिष्ट के रूप में पर्यावरण-हितैषी बने रहें। दूसरे शब्दों में, वे वातावरण को प्रदूषित न करें और वातावरण में कम से कम 'कार्बन' (ग्रीन हाउस गैसें) उंडेलें। ऐसी प्रौद्योगिकियाँ 'ग्रीन टेक्नोलॉजी' कहलाती हैं। एक दृष्टि से ये वास्तव में 'क्लीन टेक्नोलॉजी' हैं, जिनका उद्देश्य पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य संबंधी जोखिम को न्यूनतम स्तर पर ले जाना है ताकि टिकाऊ विकास की राह लगातार प्रशस्त हो।

क्या ओजोन परत को बचाने के लिए भी कुछ प्रयास हो रहे हैं?

हाँ इसके लिए सन 1985 में विएना शहर में कन्वेंशन हुआ। 'विएना कन्वेंशन' में योजनाबद्ध तरीके से ओजोन परत को नुकसान पहुँचाने वाले रसायन सी.एफ.सी. के उपयोग को नियंत्रित तरीके से कम करने पर विचार किया गया। इसके बाद सन 1987 में मांट्रियल में बैठक हुई जिसमें ड्राफ्ट तैयार किया गया। इसे 'मांट्रियल प्रोटोकॉल' के नाम से जाना जाता है। इसमें विकासशील और अविकसित देशों की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए प्रावधान रखे गए। सभी सहभागी देश सन 2050 तक '1980 के ओजोन स्तर' को प्राप्त करने के लिए कदम उठाने को सहमत हो गए। इसके अंतर्गत 'सीएफसी' के विकल्प के रूप में पहले चरण में 'एचसीएफसी' के उपयोग पर आम सहमति बनी। इसी समय प्रत्येक वर्ष 16 सितम्बर को 'ओजोन दिवस' के रूप में मनाने का निर्णय भी लिया गया। तब से यह लगातार मनाया जा रहा है।

पहले चरण में 'एचसीएफसी' क्यों?

यह इसलिए क्योंकि इसमें क्लोरिन होता है जो ओजोन परत को नुकसान पहुँचाता है। 'एचसीएफसी' में हाइड्रोजन की उपस्थिति इसे बेहतर विकल्प के रूप में प्रस्तुत करती है। अभी इसके उत्पादन की समस्या है। अतः दूसरे चरण में बेहतर विकल्प 'एचएफसी' से प्रतिस्थापित करने पर सहमति बनी। इन पदार्थों के वायुमंडल के ऊपरी भाग तक पहुँचने की संभावना नगण्य होती है। लेकिन आगे शोध से पता चला कि 'एचएफसी' ओजोन परत को तो बचाने में कारगर है, लेकिन यह बहुत प्रभावी 'ग्लोबल वार्मिंग एजेंट' भी है। अतः वैज्ञानिकों ने महसूस किया कि ओजोन परत को बचाने के वर्तमान तरीके ग्लोबल वार्मिंग को कम करने के प्रयासों को धक्का पहुँचाएँगे। यह स्वीकार्य नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में वैज्ञानिकों ने विचार किया कि 'एचएफसी' भी अच्छा विकल्प नहीं माना जा सकता। इसे ध्यान में रखते हुए वर्तमान में वैज्ञानिक ऐसे पदार्थों की तलाश में हैं जो पृथ्वी को 'ओजोन परत' के साथ ही 'ग्लोबल वार्मिंग' के खतरे से भी बचाने में समर्थ हो सकें।

ग्लोबल वार्मिंग से बचने के तकनीकी समाधान क्या हैं?

इसको समझने के लिए मैं एक उदाहरण देता

हूँ। माना कि ठंड के दिनों में हम एक कमरे में बैठे हैं। अगर ठंड अधिक हो और हमें जल्दी राहत चाहिए तो हम कमरे को जल्दी गरम करने के लिए दो या तीन हीटर का इस्तेमाल करना पसंद करेंगे। ऐसा करने पर हमें आरंभ में तो अच्छा लगने लगेगा लेकिन शीघ्र ही कमरे के ताप में बढ़ोतरी महसूस होने लगती है। फिर जब हमारे सहन करने की सीमा जवाब देने लगती है तब हम एक हीटर, फिर दूसरे और फिर भी राहत न मिले तब तीसरे हीटर को भी बंद करने लगते हैं। हम हर हाल में अनुकूल वातावरण चाहते हैं। खैर यह तो हमारे अपने हाथ में है और सिर्फ एक कमरे की ही बात है। अगर कमरे में हम अकेले हैं तब तो यह आसान है। लेकिन अगर कमरे में और लोग भी उपस्थित हैं, तब हर व्यक्ति की अपनी-अपनी राय होती है। अनुभव की जा सकने वाली सीमा को लेकर मत भिन्नता हो सकती है। कुछ लोग जो हीटर के पास होते हैं वे हीटर को बंद करने और जो दूर होते हैं वे हीटर को चालू रखने के पक्ष में हो सकते हैं। मिल बैठ कर एक समझौता हो सकता है जिसमें दूर वालों को कुछ जगह देने को कहा जा सकता है ताकि पास वाले वहाँ आ कर बैठ सकें। इस तरह सब मिलजुल कर एक साथ रह सकते हैं। लेकिन इस तरह की स्थिति के निर्मित होने पर छोटी स्केल का यह समाधान बड़ी स्केल वाली विशाल धरती पर काम नहीं आ सकता। इसके लिए ग्रीन टेक्नोलॉजी समाधान के रूप में सामने आई है।

ग्रीन टेक्नोलॉजी से क्या होगा?

हम जानते हैं कि प्रत्येक उत्पाद और उनकी गुणवत्ता अपने निर्माण के लिए कच्चे माल, बिजली, पानी तथा विभिन्न भौतिक और रासायनिक प्रक्रियाओं के साथ ही अपनाई जाने वाली प्रौद्योगिकियों पर निर्भर करते हैं। अतः उत्पादों की गुणवत्ता को बनाए रखते हुए पर्यावरण को नुकसान पहुँचाए बगैर निर्माण करने में समर्थ प्रौद्योगिकियों (ग्रीन टेक्नोलॉजी) को अपनाना होगा। इनसे प्राप्त उत्पाद उपयोग के दौरान तथा उपयोग के बाद भी पर्यावरण हितैषी बने रहते हैं।

ग्रीन टेक्नोलॉजी में विद्युत की आवश्यकता की पूर्ति के लिए नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों, जैसे सौर (सोलर) और पवन (विण्ड), के उपयोग करने पर विशेष जोर दिया जाता है। इस दौरान औद्योगिक प्रतिष्ठान कम्प्यूटराइजेशन और ऑटोमेशन (स्वचलीकरण) पर भी विशेष ध्यान देते हैं ताकि विद्युत की बचत की जा सके। ग्रीन रास्तों पर चलते हुए उत्पाद तैयार करने के लिए आवश्यक कच्चे माल के लिए खनन के उन तरीकों पर भी ध्यान दिया जाता है जो प्रकृति को कम से कम नुकसान पहुँचाए तथा पर्यावरण को कम से कम प्रदूषित करे। प्रयास इस दिशा में भी होते हैं जिससे उत्पादों के निर्माण के लिए कम से कम कच्चे माल की जरूरत पड़े तथा उन्हें 'रिसाइकलिंग' के माध्यम से प्राप्त किया जा सके। ऐसा उस जिम्मेदारी की भावना से किया जाता है जिससे प्राकृतिक संसाधन भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित बचे रह सकें। इसके लिए इस ग्रीन टेक्नोलॉजी में मजबूती, हल्केपन जैसे आवश्यक गुणों वाले पदार्थों के विकास हेतु शोध पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

तो फिर दिक्कत कहाँ है?

तकनीकी समाधान के रूप में उपलब्ध ग्रीन टेक्नोलॉजी को अपनाने में प्रमुख बाधा इनका महँगा होना है। इनको विकसित करने के लिए आवश्यक कच्चा माल सुगमता से नहीं मिलता है। अतः आज हमें सस्ती एवं 'पर्यावरण हितैषी' ऐसी ग्रीन टेक्नोलॉजी की जरूरत है जो कम से कम कार्बन-बजट में अधिक से अधिक दक्ष साबित हो। कार्बन एक रूपक है जिसका अर्थ पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने के लिए हमारे द्वारा किए जा रहे प्रयासों का मापन है। जितना कम कार्बन होगा उतना ही अधिक पर्यावरण हितैषी

हमारा कदम होगा। ग्रीन टेक्नोलॉजी इसमें निश्चित ही मददगार है। हालाँकि अभी इसे अपनाने में कुछ कठिनाइयाँ हैं। लेकिन ऐसी कुछ जमीनी हकीकतें भी हैं जिन पर विचार कर हम अपने कार्बन-बजट को कम कर सकते हैं।

क्या हैं जमीनी हकीकतें?

आज हमें जमीनी सच्चाइयों से परिचित होने की जरूरत है। पर्यावरण प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन की समस्या सार्वदेशिक है, विश्वव्यापी है। यह किसी एक की समस्या नहीं, बल्कि सबकी समस्या है। ऐसे में सबको चिंतित होने तथा समाधान में भागीदार बनने की जरूरत है। यह याद रखना होगा कि समाधान कई चरणों में सम्पन्न होगा। अतः धैर्य की आवश्यकता होगी। हमारे यहाँ विभिन्न मानसिक स्तर के लोग रहते हैं। अभी लोग अपनी हर समस्या के समाधान के लिए सरकार की ओर ताकते हैं और निर्भर रहते हैं। लेकिन सरकारी प्रयासों में जनभागीदारी जरूरी है। समस्या दूर करने की व्याकुलता जरूरी है। सरकारी प्रयासों से अलग व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर निजी प्रयासों की भी आश्यकता है। अक्सर सरकार की योजनाएँ अच्छी होती हैं लेकिन पर क्रियान्वयन कमजोर होने से वे सफल होने से पहले ही चरमरा जाती हैं।

आज समूची धरती गैस चैम्बर और ग्रीन हाउस में रूपांतरित हो गई है। हाल ही में दिल्ली के इसकी चपेट में आने के समाचार सुर्खियों में आए थे। लेकिन कौन जाने कब और कौन इसकी चपेट में आने वाला है। देर सबेर, एक देश, फिर पड़ोसी देश और फिर समूची पृथ्वी इसका शिकार हो सकते हैं।

लोगों को दिल से शामिल करने के लिए क्या करें?

विश्व की बड़ी आबादी निचले स्तर की है। वह गरीबी की शिकार है। उनके सामने अपने भरण-पोषण की समस्या इतनी बड़ी है कि वह पर्यावरणी समस्या को महसूस ही नहीं कर पाती। उन तक संदेश पहुँचना जरूरी है। वैसे देखने में तो यह भी आया है कि सभी स्तर के लोग इस समस्या को उस गंभीरता से नहीं लेते जितनी आवश्यकता है। इस समस्या को लोगों द्वारा गंभीरता से महसूस करना जरूरी है। जन-जागरण के एक प्रभावकारी आंदोलन की जरूरत है। लोगों में जागरूकता के साथ जिम्मेदारी का भाव जागना जरूरी है। ऐसा होने पर ही फिजूल बह रहे नल की टोंटी बंद करने और बिजली का स्विच बंद करने के लिए हाथ स्वयमेव उठने लगेंगे। एक से दो, दो से चार, आठ से सोलह... और इस तरह कारवाँ जुटने लगता है। सुधार की दिशा में गंभीरता दिखने लगती है। लोग अपने आप कदम उठाने लगते हैं।

शिक्षा और युवाओं की भूमिका किस तरह सुनिश्चित की जा सकती है?

सर्वे बताते हैं कि पिछले कुछ वर्षों में पर्यावरण को लेकर लोगों में अवश्य ही कुछ जागरूकता बढ़ी है। लेकिन अभी इस दिशा में बहुत कुछ किए जाने की जरूरत है। यह निर्विवाद तथ्य है कि जन-चेतना के बिना किसी भी देश की सरकार के लिए काम करना मुश्किल है।

आज कई अकादमिक मंच और संस्थाएँ लोगों में वैज्ञानिक और पर्यावरणी जागरूकता में वृद्धि के लिए कार्य कर रहे हैं। इसलिए पर्यावरण दिवस, ओजोन दिवस, सूर्य दिवस, पृथ्वी दिवस,

अर्थ अवर आदि विश्व-स्तर पर मनाए जा रहे हैं। पत्रकारों ने भी इन आयोजनों की रिपोर्टिंग पर ध्यान केंद्रित किया है।

इन आयोजनों से जागरूकता बढ़ी है। लोगों में समझ बढ़ी है। लेकिन अपनी जीवन-शैली को बदलने और उसे पर्यावरण-हितैषी बनाने के लिए आवश्यक रुचि में अभिवृद्धि दिखाई नहीं दे रही है। भौतिक सम्पन्नता की चाह और दिखावे ने आनन्द पाने के असली स्रोतों को छुपा दिया है। विलासितापूर्ण और आत्म-केंद्रित जीवन-शैली विस्तार लेती जा रही है। इसके मार्ग में आने वाली बाधा असह्य लगने लगी है। इसीलिए आज अपने हित को चोट पहुँचाने वाली छोटी-छोटी घटनाओं पर लोगों का गुस्सैल और हिंसक व्यवहार सामने आने लगा है। अपने लाभ के लिए लोक-सम्पत्ति और प्राकृतिक सम्पदा को नुकसान पहुँचाना सामान्य बात होने लगी है। वर्तमान में 'नैतिक मूल्यों' पर 'पूँजी' और 'ईको' पर लोगों का 'ईगो' हावी होने लगा है। इस तरह लोगों के मन-मस्तिष्क प्रदूषित हो रहे हैं तथा उनमें विवेक-दृष्टि गायब होने लगी है। आज 'लोकल और ग्लोबल वार्मिंग' के साथ ही 'मेंटल वार्मिंग' भी नजर आने लगी है।

इस तरह ग्लोबल वार्मिंग के दुष्प्रभावों से बचाने के लिए प्रस्तुत किए जा रहे 'तकनीकी' समाधानों के साथ ही समाज में जागरूकता लाने के लिए शिक्षा जगत को जोड़ना जरूरी है। इसके अलावा 'टिकाऊ विकास' के लिए हमें 'तकनीकी' समाधानों के साथ ऐसा कुछ करना होगा जो लोगों की मानसिकता को बदल कर उसे 'ईको-फ्रेंडली' बना सके। लेकिन सतही प्रयासों से काम चलने वाला नहीं है।

क्या मतलब?

आज हमें लोगों को दैनिक जीवन की प्रत्येक गतिविधि में पर्यावरणी नजरिए को अपनाने हेतु जागरूकता अभियान चलाना होगा। इस नजरिए में सिर्फ आदमी ही नहीं, प्रकृति का भी नेटवर्क में रहना जरूरी है। जब प्रगति की बात हो तो सिर्फ लोगों की भौतिक प्रगति की ही बात न हो, उनकी मानसिक प्रगति की भी बात हो ताकि उनका दिल जुड़ सके।

इस तरह जब समाज में जागरूक और वैज्ञानिक मिजाज वाले विवेकी लोग होंगे तो वे कल्याण की भावना से भरपूर होते हुए जीवन-मूल्यों की कद्र करने वाले भी होंगे। वे उस तकनीकी प्रगति और तरीकों का विरोध करेंगे जो हमारे अस्तित्व को संकट में डालने वाले हों। लोगों में अच्छे और बुरे में भेद करने की क्षमता होने तथा अच्छे के पक्ष में खड़ा होने से ही वर्तमान चुनौतियों से जूझा जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रयास किस तरह के हो सकते हैं?

हम जानते हैं कि किसी भी जीव का उसके परिवेश से गहरा संबंध रहता है। आंतरिक परिवेश तय करता है शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की गुणवत्ता को। अगर हम अपने को बीमार पाते हैं या हम अच्छा महसूस नहीं कर रहे हैं तो इसका साफ मतलब है कि हमारे परिवेश में कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ है।

रेगिस्तान में प्यासे के लिए पानी से कीमती और क्या हो सकता है? पर्यावरण और परिस्थितियों के बदलने से वस्तु का मूल्य बदल जाता है। पर्यावरण से जोड़ कर ही किसी वस्तु का मूल्य आँका जाता है। कालकोठरी में बंद होने पर व्यक्ति वह व्यवहार नहीं दिखाता जो वह उससे मुक्त रहने पर दिखाता रहा है। बिना अच्छे वातावरण के और बिना पौष्टिक आहार के क्या कोई स्वस्थ रह सकता है? क्या वह कभी अच्छे परिणाम दे सकता है? भयातुर करने वाली परिस्थितियों में रख कर काम तो कराया जा सकता है लेकिन उस काम की गुणवत्ता निःसंदेह अच्छी नहीं होगी। इसी तरह दड़बों में बंद बीमार

मुर्गियों से क्या अच्छे अण्डे पाने की अपेक्षा की जा सकती है?

हमारी गतिविधियों का अपने परिवेश से गहरा संबंध है?

हाँ। सच तो यह है कि पर्यावरण से अलग करने पर वस्तु वह प्रभाव भी नहीं दिखाती है जो हमें स्वाभाविक रूप में नजर आता है। अपने परिवार के बीच रहना और उससे कट कर रहने में बहुत फर्क होता है। अब हम जड़ी-बूटियों पर विचार करें। जैविक दृष्टि से जड़ी-बूटी का अपना महत्व है। अगर इनमें से रासायनिक दृष्टि से प्रभावकारी तत्वों को बाहर निकालकर उन्हें उपचार हेतु प्रयुक्त करें तो शरीर उसे बाहरी तत्व मानते हुए बड़े अनमने भाव से स्वीकार करेगा। उसकी सहायता से इलाज भी करेगा। लेकिन प्रतिक्रिया भी व्यक्त करेगा। प्राकृतिक अवस्था में दी गई जड़ी-बूटी में दवा की मात्रा तो बहुत कम होती है लेकिन उसके पर्यावरण में अनगिनत चीजें होती हैं जो दवा के साथ ही प्रवेश करती हैं। इनका शरीर के साथ दोस्ताना संबंध रहता है जिससे दवा को सहयोग मिलता है और शरीर बिना विरोध और बुरी प्रतिक्रिया के स्वस्थ हो जाता है। लेकिन आज हम उस तत्व को उसके परिवेश से काट कर अलग करके उद्योग खड़ा कर दवा बनाते हैं।

क्या मीडिया का कोई रोल है?

निश्चित है। ग्लोबल वार्मिंग और लोगों की गतिविधियों के बीच एक अदृश्य संबंध है। इसको प्रकट करने की जिम्मेदारी निश्चित ही मीडिया की है। उसे वह तकनीक खोजनी होगी जो इस संबंध को उजागर कर सके। जब तक लोगों को यह समझ नहीं आएगा कि वे भी इसके लिए जिम्मेदार हैं, ग्लोबल वार्मिंग को रोकने में किए जा रहे प्रयासों को अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकती है। अतः हमारे भविष्य को अत्यधिक प्रभावित करने वाले इस विषय के बारे में जन-जागरूकता लाने के लिए मीडिया को नए सिरे से विचार करना होगा।

लोगों में पर्यावरणी चेतना बढ़ रही है। स्थानीय स्तर पर प्रेरक कहानियाँ जन्म ले रही हैं। ऐसी कहानियाँ निश्चित ही संख्यात्मक दृष्टि से अभी कम हैं लेकिन ये बड़ा संदेश दे रही हैं। इनसे पता चलता है कि अगर जोश और जुनून हो तो असंभव कुछ भी नहीं होता। आज इसी जुनून और जज्बे की जरूरत है क्योंकि कई समस्याओं से हम जूझ रहे हैं। हमारी वर्तमान सभी समस्याओं का गहरा संबंध प्रकृति और पर्यावरण से है। इसमें कोई दो मत नहीं कि प्रकृति को बचाए बगैर हम किसी भी तरह स्थायी समाधान तक नहीं पहुँच सकते हैं। ऐसी कहानियों को भी जनता के बीच ले जाने की जिम्मेदारी मीडिया की है।

क्या लोक-परम्परा, देशज ज्ञान और लोक-विज्ञान से भी मदद ली जा सकती है?

निश्चित ली जा सकती है। भारत में प्राचीन काल से ही पर्यावरणी चेतना विद्यमान रही है। इसके दर्शन लोक-परम्पराओं और देशज ज्ञान में किए जा सकते हैं। इसमें छिपे संदेशों को ग्रहण करने और इनमें छिपे विज्ञान को बाहर लाने पर ही ये अंधविश्वासों और धार्मिक रीति-रिवाजों की सीमा से निकलकर लोक-कल्याण और पर्यावरण की रक्षा के लिए अहम बन सकते हैं। अतः लोगों को यह समझाने की जरूरत है कि जब पदार्थ कम तथा उपभोक्ता अधिक हों तो 'संयम और धैर्य के साथ अपरिग्रह' ही समाधान बन कर सामने आते हैं। अतः 'तृष्णा' को कम कर अपनी इच्छाओं पर लगाम लगाए बिना बात बन नहीं सकती है। सच में देखा जाए तो आज लोग पर्यावरण प्रदूषण के कारणों को जानते हुए भी उन्हीं गतिविधियों में संलग्न रहते हैं जिनसे पर्यावरणी खतरे कम होने की बजाए बढ़ते हैं। ऐसे में विवेकी, संयमी और संवेदनशील समाज के निर्माण में शिक्षा का अहम योगदान हो सकता है। यह शिक्षा जगत से जुड़े लोगों के लिए एक चुनौतीपूर्ण दायित्व है।

हम क्या करें?

हमें समझना होगा कि सिर्फ हल्ला करने से कुछ नहीं होगा। अपने विवेक को जगाना होगा। धरती के हित में सोचना और निर्णय लेना होगा। अपने हर काम पर स्वयं नजर रखनी होगी तथा कठोरता से अपने लालच, स्वार्थ पर नियंत्रण रखना होगा। जब कोई सख्ती करे तभी हम पालन करेंगे, यह अच्छी बात नहीं। सी.एन.जी. की अनिवार्यता के समय लोगों और मीडिया का विरोध याद करें। सुप्रीम कोर्ट को हस्तक्षेप करना पड़ा। क्या हर बात में ग्रीन ट्रिब्यूनल की सख्ती जरूरी है?

आज हम यह नहीं कह सकते कि समाज में पर्यावरणी-चेतना का अभाव है। आज आवश्यकता है लोगों में विवेक को जगाने की। लोग जानबूझ कर सोए हुए हैं। जो जानबूझ कर सोते हैं, वे अपनी शर्तों पर ही उठते हैं। जानकर सोए हुए लोग चेतना-शून्य नहीं होते, वे विवेक-शून्य होते हैं। अतः ऐसे लोगों को बताने की आवश्यकता है कि आग लगी है। आप जिसे पाने के लिए सोने का नाटक कर रहे हैं, जब वह पर्यावरण ही नहीं रहेगा, जिसमें रह कर आपको उसका उपभोग करना है, तो क्या करोगे? पर्यावरण बचेगा तो आप, हम और यह धरती बचेगी।

रेगिस्तान में अत्यंत कम वर्षा के कारण लोगों ने कम जल के साथ जीना सीख लिया। जल अनुशासन और आपसी भाईचारा उनकी जीवन शैली का अंग बन चुका है। पानी की कम आवक के बावजूद संतोष था। लेकिन हममें प्रकृति को नजरअंदाज कर आगे बढ़ने का गुरूर हो गया। खुशियाँ लाने का विचार अच्छा है, लेकिन खुशियाँ दूरगामी होना चाहिए। हमने दूरगामी विचार किए बगैर प्रकृति की व्यवस्थाओं के विकल्प खोजे और नहरें बिछाई और नलकूपों का निर्माण किया। जहाँ जहाँ हमने नहरें बिछाई वहाँ वहाँ पानी की किफायत करना लोग भूल गए। उन जगहों पर अधिक पानी की आवक ने लोगों में 'लापरवाह' प्यास को भी जगा दिया। जब कभी संपदा बढ़ती है तो लालच और संग्रह वृत्ति और स्वार्थ भी बढ़ता है। यही पानी के साथ हुआ। कुछ समय के बाद वहाँ पानी मिलना कम होने लगा। नतीजा बहुत बुरा रहा। पानी के लिए मारा-मारी, दंगे, लड़ाइयाँ आम बात हो गई। परिवार टूटने लगे और अनुशासन टूटने लगा। युगों से चली आ रही सामुदायिक भावना को गहरा आघात पहुँचा। जहाँ नहरें और नलकूप नहीं बने, वहाँ जल अनुशासन बना रहा। पानी की फिजूलखर्ची पर अपने आप नियंत्रण बना रहा।

वर्षा के दिनों में पानी के बहाव पर पैनी नजर ने जल एकत्रित करने और जल स्रोतों के निर्माण की तकनीक सुझाई। जैसे अनुभव ने मिस्र में नील के अभिशाप को वरदान में बदल दिया। समाज की पहल से जल स्रोतों का निर्माण और फिर समाज को ही उपयोग के लिए ये समर्पित कर दिए जाते थे।

इसका मतलब हुआ कि हमें अपनी मानसिकता को बदलना है?

बिल्कुल सही। 'द इकोलॉजिस्ट' के सम्पादक गोल्डस्मिथ और उनके साथियों ने मिल कर सन 1990 में एक पुस्तक लिखी थी। उसका नाम था 'पृथ्वी ग्रह को बचाने के 5000 दिन'। ये 5000 दिन तो सन 2005 में ही पूरे हो गए। लेकिन आज भी हम बचे हुए हैं। हम बचे रह सके क्योंकि हम जागे और आसन्न खतरों से निपटने के लिए सक्रिय हुए। इस दौरान भले ही हमारे प्रयास नाकाफी रहे हों लेकिन सकारात्मक रहे और उसका प्रभाव समाज में पर्यावरणी चेतना के रूप में परिलक्षित भी हुआ। लेकिन खतरा अभी टला नहीं है। सिर्फ मोहलत बढ़ी है।

आज लोगों को गहराई से यह समझने की जरूरत है कि हम पृथ्वी पर पाई जा रही बेशकीमती 'जैव विविधता' के जाल की कई

लड़ियों में से मात्र एक लड़ी हैं। सब लड़ियाँ एक-दूसरे से मिल कर जीवन का जाल रचती हैं। अतः लोगों को यह समझना होगा कि सबका अस्तित्व ही उनके अपने अस्तित्व की गारंटी है। लेकिन लोगों की सहज और सामान्य बुद्धि उन्हें ऐसा समझने नहीं देती है। इसीलिए आज लोगों की गतिविधियों और पर्यावरण के विभिन्न घटकों के बीच अंतरसंबंधों तथा सह-निर्भरता को समझाने के लिए गले उतरने वाले तर्कों के साथ बातें रखने की जरूरत है। इससे लोगों को अपनी मानसिकता बदलने में आसानी होगी। बिना ऐसा किए बात बनने वाली नहीं है। मानसिकता बदलने से लोग पर्यावरणी खतरों और उनके अपने योगदान को जानने और मानने लगेंगे, फिर अपने दैनिक जीवन में तदनुसार आवश्यक बदलाव करने लगेंगे। इसके लिए सचमुच ही एक सशक्त प्रभावी अभियान चलाने की आवश्यकता है जिसमें बच्चों की अहम भूमिका हो सकती है क्योंकि वे तार्किक और भावुक होते हैं तथा परिवार की आशा के केंद्र होने से परिवार के सदस्यों को समझाने में समर्थ होते हैं।

हम क्या संकल्प लें?

यह याद रखें कि हम आत्मनिर्भर नहीं परस्पर निर्भर हैं। हमें तत्काल अपने और सामूहिक स्तर पर कदम उठाने की आवश्यकता है। क्योंकि अगर हम आज नहीं चेते तो इसके तेज होने और विस्फोटक होने का खतरा सामने है।

धरती का बुखार सामान्य नहीं है। यह अपने अंदर कई समस्याओं को छिपाए हुए है। ये सभी आपस में जुड़ी हुई हैं। इन सबकी जड़ में नजरिये का संकट है। यह एक ऐसा सच है जिसकी उपेक्षा करना घातक है, चाहे कोई इससे सीधे प्रभावित हो रहा है अथवा नहीं। प्रभावित तो सब हो रहे हैं चाहे कोई इसे महसूस करे अथवा नहीं। इसलिए हम संकल्प लें जिससे हमारे कारण पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रदूषण के बोझ में कुछ कमी हो सके। कदम भले ही छोटे हों, लेकिन ठोस हों। ऐसी जीवन-शैली अपनाएँ जहाँ ऊर्जा पर निर्भरता कम हो। धरती पर मुस्कान बची रहे। आज जलवायु परिवर्तन की बात काल्पनिक नहीं, एक वास्तविकता है।

अपने कार्बन फुटप्रिंट (पदचिह्न) को हल्का करें। जितना अधिक हम 'ग्रीन' रह सकते हों, रहें। समय का अभाव न हो तथा शरीर साथ दे तो पैदल चलें, सायकिल चलाएँ लेकिन स्कूटर और कार का इस्तेमाल तभी करें जब यह सुनिश्चित हो कि इसके बिना काम चलने वाला नहीं। संभव हो तो अकेले चलने की बजाए कार पूल करें। कागज बचाएँ, कागज के दोनों और लिखें या प्रिंट करें। पैंसिल का उपयोग करते हुए कागज का एकाधिक बार इस्तेमाल करें। रीड्यूज, रीयूज और रीसायकल के दर्शन को गंभीरता से समझें और अपनी प्रत्येक गतिविधि के दौरान सबका ध्यान रखते हुए अपने विवेक का इस्तेमाल करें। बिजली बचत के हर संभव उपाय करें। कमरे से बाहर निकलते समय लाइट और पंखों के स्वीच बंद करें। आवश्यकता नहीं होने पर स्टेंडबाय मोड में काम कर रहे उपकरणों को भी बंद करने की आदत डालें। रोशनी के लिए एल.ई.डी बल्ब का उपयोग करें। नए मकानों के निर्माण के समय हवा और प्रकाश की प्राकृतिक व्यवस्था पर जोर दें।

वैज्ञानिकों ने जिसे अपनी भाषा में पढ़ा और समझा है उसे जन-सामान्य को समझने वाली भाषा में समझाने की व्यवस्था करें।

इस तरह आपके द्वारा छोटे-छोटे कदम उठा कर तथा अपनी मानसिकता को बदल कर बीमार पड़ रही पृथ्वी को स्वस्थ कर आसन्न पर्यावरणी संकट से सफलतापूर्वक निपट सकते हैं।

धरती हमारी चेरी नहीं, माँ है। आइए! इसे बचाने का दिल से संकल्प लें।

(डा. कपूरमल जैन भौतिक शास्त्री और लोकप्रिय विज्ञान-लेखक हैं। बोधगम्य विज्ञान संचारक हैं।)

मो. 09425674221

(Email - kapurmaljain2@gmail.com)

दोधारी तलवार पर हैं जम्मू-कश्मीर के पत्रकार

■ सुरेश डुग्गर

कुछ अरसा पहले एक पत्रकार की गोली मार कर की गई हत्या तथा एक अन्य को गोली मारने की घटनाएँ इसके पुख्ता सबूत हैं। स्थिति यह है कि कश्मीर के पत्रकारों द्वारा अगर किसी संगठन का वक्तव्य प्रकाशित किया जाता है तो दूसरा नाराज हो जाता है और प्रतिबंध का खतरा बना रहता है। कश्मीर प्रेस आतंकवादियों के बीच फँसी हुई है। वैसे भी कश्मीर में प्रेस पर प्रतिबंध लगाने तथा उसे धमकियाँ देने की कहानी कोई नई बात नहीं है। यह उतनी ही पुरानी है जितना पुराना कश्मीर में आतंकवाद है।

आतंकवादियों ने प्रेस के विरुद्ध छेड़ी गई अपनी मुहिम के अंतर्गत समाचारपत्रों के कार्यालयों को आग लगाने के अतिरिक्त पत्रकारों का अपहरण करना, उन्हें पीटना तथा धमकियाँ देने की कायरतापूर्ण हरकतें भी की हैं। कुछ समाचारपत्रों को तो अपना प्रकाशन हमेशा के लिए स्थगित करने के अतिरिक्त निष्पक्ष रिपोर्टिंग करने वालों को घाटी त्यागने के निर्देश भी मिले हैं। साल 1990 कश्मीर घाटी के पत्रकारों के लिए बहुत ही बुरा रहा था जब आतंकवादियों द्वारा चार मीडियाकर्मियों की हत्या कर दी गई थी। उन्होंने 13 फरवरी 1990 को श्रीनगर दूरदर्शन केन्द्र के निदेशक लस्सा कौल की हत्या करके पत्रकारों पर पहले हमले की शुरुआत की थी और फिर इन हमलों का शिकार पीएन हांडू, मोहम्मद शबान वकील, सईद गुलाम नबी और मुहम्मद रंजूर को भी होना पड़ा। यह भी सच है कि आतंकवादियों के निशाने पर अधिकतर मुस्लिम पत्रकार ही थे जिन्हें 'जेहाद' के नाम पर मार डाला गया था। इन सभी पर आरोप लगाया गया था कि वे उनके संघर्ष के विरुद्ध लिख रहे हैं तथा कश्मीर समस्या के हल के बारे में चर्चा कर रहे हैं। प्रिंटिंग प्रेसों में बम धमाकों, कार्यालयों में तोड़फोड़ का सिलसिला ऐसा आरंभ हुआ था जो आज भी जारी है।

हमलों की तरह ही पत्रकारों की गतिविधियों तथा समाचार पत्रों के प्रकाशन और उनकी बिक्री पर प्रतिबंध लगाए जाने के मामले इतने हो चुके हैं कि उनकी गिनती कर पाना अब मुश्किल होता जा रहा है। प्रतिबंधों का सामना करने वालों में जम्मू, नई दिल्ली, चंडीगढ़ तथा देश के अन्य भागों से प्रकाशित होने वाले समाचारपत्र और पत्रिकाएँ भी हैं।

प्रत्येक आतंकवादी संगठन का मानना है कि उसकी हर एक गतिविधि सुर्खी बने। लेकिन बीसियों की तादाद में आने वाले बयान प्रतिदिन समाचारपत्रों के लिए मुसीबत पैदा कर रहे हैं। यही कारण है कि कश्मीर घाटी से प्रकाशित होने वाले दैनिक कई बार अपने मुख्य पृष्ठों पर बाक्स आइटम प्रकाशित करते हुए अपनी दशा जाहिर कर चुके हैं। इस बाक्स में समाचारपत्रों द्वारा लिखा गया था कि प्रतिदिन उन्हें 50 से 60 वक्तव्य ऐसे आते हैं जिनमें प्रथम पृष्ठ की माँग की होती है और इसलिए इन दलों से निवेदन किया गया था कि वे तीन-चार लाइनों से बड़ा वक्तव्य जारी न करें।

जम्मू कश्मीर पिछले 27 सालों से आतंकवाद की चपेट में है। इस दौरान यहाँ समाज और सरकार की सारी संस्थाएँ आतंकवाद की ज्वाला में झुलस कर अपना तेज खो चुकी हैं। मगर प्रजातंत्र का चौथा स्तम्भ कहलाने वाली प्रेस इस अशांति के समय में भी न केवल अपना अस्तित्व बचाए हुए है, बल्कि सारे खतरे उठाते हुए अपने दायित्व का भी पूरी तरह से निर्वाह कर रही है। यहाँ तक कि पिछले 17 सालों से मानवाधिकार के मुद्दे पर भारत ने पाकिस्तान को जो करारी शिकस्त दी, उसके पीछे भी जम्मू कश्मीर के पत्रकारों के लेखन का बहुत बड़ा हाथ है। हालाँकि आतंकवादियों ने इन पत्रकारों की कलम को रोकने की भरपूर कोशिश की। कई बार जिनीवा, लंदन और फिर डेनमार्क तथा कांसाब्लांका में भारतीय अधिकारी यहीं के पत्रकारों द्वारा लिखी गई रिपोर्टों को आधार बना कर ही अपना पक्ष मजबूत कर पाए हैं। लेकिन यह भी कड़वी सच्चाई है कि आज कश्मीर प्रेस की स्थिति कुएँ और खाई के बीच वाली हो गई है। यहाँ पत्रकारों का जीवन दोधारी तलवार की तरह हो गया है।

यहाँ तक कि हिज्बुल मुजाहिदीन ने तो मार्गदर्शिका जारी करके स्पष्ट किया कि क्या लिखना होगा और क्या नहीं। उसने समाचारपत्रों को यह भी धमकी दे दी कि अगर उसे दस प्रतिशत कम से कम कवरेज नहीं दी गई तो गंभीर परिणाम होंगे। विपरीत परिस्थितियों में कार्य कर रहे पत्रकार इस दुविधा में हैं कि वे किस प्रकार स्वतंत्र रूप से कार्य को अंजाम दें। परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि निष्पक्ष और स्वतंत्र रूप से कार्य कर पाना कठिन होता जा रहा है। आतंकवादियों के चक्रव्यूह का शिकंजा दिन-प्रतिदिन कसता जा रहा है जिससे बाहर निकलने का रास्ता फिलहाल नजर नहीं आ रहा है।

एक तरफ उन पाक समर्थित आतंकवादियों की बंदूकें तनी हुई हैं, तो दूसरी ओर राज्य सरकार उन्हें सूचना के अधिकार से वंचित रखने से लेकर उन पर डंडे बरसाने, गिरफ्तार करने और उनका हर तरह से दमन करने की कोशिशों में लगी रहती है। कश्मीर में आज जो अप्रत्यक्ष युद्ध चल रहा है, उसमें सबसे ज्यादा दबाव पत्रकारों पर बनाया जा रहा है। भारतीय प्रेस परिषद ने भी जम्मू कश्मीर में कार्यरत पत्रकारों की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि राज्य सरकार पत्रकारों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार करती है। उन्हें सुरक्षा, सूचना एवं निर्भय होकर कार्य करने का माहौल देने में वह असफल रही है।

इस मामले पर वरिष्ठ पत्रकारों का कहना है कि यह सरकार सिर्फ पत्रकारों से ही नहीं, बल्कि कला और संस्कृति से जुड़े सभी लोगों और बुद्धिजीवियों से दूरी बनाए रखना चाहती है। पिछले 27 सालों के आतंकवाद के दौर के दौरान सात वर्ष के राष्ट्रपति शासन काल में राज्य के अफसर गैर जिम्मेदार और अहंकारी हो गए हैं। वे जनता के सभी वर्गों से कट चुके हैं। चुनी हुई सरकार के अस्तित्व में आने के बावजूद अफसरशाही किसी के भी प्रति खुद को जवाबदेह नहीं मानती है। इन स्थितियों में उससे यदि कोई सवाल कर सकता है तो वह पत्रकार ही है। आतंकवादियों की ही तरह अफसरशाह भी वर्तमान स्थितियों का पूरी तरह से फायदा उठा रहे हैं। खुद कई पूर्व केन्द्रीय गृहमंत्री यह स्वीकार कर चुके हैं कि राज्य के विकास के लिए भेजे पैसे का

भारी दुरुपयोग हुआ है और आतंकवादियों तथा अफसरशाहों का आपसी गठजोड़ इसके बड़े हिस्से को डकार गया है। वहीं स्वतंत्र पत्रकार अनिल साक्षी का कहना है कि पत्रकारों एवं साहित्यकारों के प्रति राज्य सरकार का रवैया बिल्कुल उदासीन है। सरकारें यहाँ के प्रख्यात साहित्यकारों को हमेशा दरकिनार करती आई हैं। कुछ वर्ष पूर्व ख्यातिप्राप्त कवि एवं यहाँ के एकमात्र हिन्दी दैनिक के संपादक वेद पाल दीप के असामयिक निधन पर भी राज्य सरकार का यही रवैया था।

जम्मू कश्मीर में अभी तक डेढ़ दर्जन से ज्यादा मीडियाकर्मी अज्ञात बंदूकधारियों द्वारा मारे जा चुके हैं। सरकार कहती है कि इन्हें आतंकवादियों ने मारा और आतंकवादी इसका आरोप सरकार पर लगाते हैं। राज्य सरकार अभी तक किसी भी हत्या के मामले में दोषियों को सजा दिलाने में सफल नहीं हुई है। इसका कारण आतंकवादियों द्वारा यह बार-बार दोहराया जाना है कि सरकार इन हत्याओं के मामलों को दबाना चाहती है। आज दशा यह है पत्रकारों की कि उन्हें दोधारी तलवार पर चलने के बावजूद सरकार तथा आतंकवादियों का कोपभाजन होना पड़ रहा है। जहाँ आतंकवादी सीधे तौर पर खबर न छापने पर धमकी या चेतावनियों से कार्य चला रहे हैं तो सरकार अप्रत्यक्ष रूप से ओछे हथकंडे अपना रही है। आज आतंकवादी दल चाहते हैं कि उन सभी का समाचार प्रथम पृष्ठ पर आए तथा हिज्बुल मुजाहिदीन ने तो पत्रकारों तथा संपादकों के लिए दिशा-निर्देश भी भिजवा रखे हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं। किस विषय पर लिखना चाहिए और किस पर नहीं। और बंदूक के साये तले - यह बंदूक का साया कभी आतंकवादियों का होता है, तो कभी सुरक्षा बलों का, कार्य करने वाले विशेष कर कश्मीर घाटी के पत्रकार सच को झूठ और झूठ को सच लिखने के लिए मजबूर हैं। ❑❑

भारतीय पत्रकार मालिनी सुब्रमण्यम को प्रेस स्वतंत्रता अवार्ड

भारतीय पत्रकार मालिनी सुब्रमण्यम को अंतरराष्ट्रीय प्रेस स्वतंत्रता अवार्ड से सम्मानित किया गया है। मालिनी को यह सम्मान नक्सल प्रभावित बस्तर क्षेत्र से रिपोर्टिंग के लिए दिया गया है। उनके अलावा तीन और पत्रकारों को भी इस सम्मान से नवाजा गया है। मालिनी को यह सम्मान पत्रकार संरक्षण समिति (सीपीजे) ने प्रदान किया है। उनके अलावा समिति ने अल सल्वाडोर के ऑस्कर मार्टिनेज और तुर्की के कैदुंदार को भी सम्मानित किया है। जेल में बंद मिस्र के फोटोग्राफर अबू जेइद को उनकी अनुपस्थिति में यह सम्मान दिया गया है। समाचार वेबसाइट स्क्रॉल में खबर भेजने वाली मालिनी ने छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले में हो रहे हर तरह के अत्याचार को

पुलिस और सुरक्षा बलों के अत्याचार, यौन हिंसा, किशोरों की गिरफ्तारी, सुरक्षा के नाम पर होने वाली हत्याएँ और पत्रकारों को मिलने वाली धमकी को उजागर किया है। मानवाधिकार हनन और राजनीति का नकाब उतारने के कारण मालिनी से पूछताछ की गई। पुलिस और निगरानी दस्ते ने उनका पीछा भी किया। इतना ही नहीं पुलिस ने उन्हें बदनाम करने का प्रयास किया और उन्हें माओवादियों का एजेंट बताया था। ❑❑

लोकजीवन का चितेरा पत्रकार

■ संजय द्विवेदी

पं. श्यामलाल चतुर्वेदी और उनकी पत्रकारिता सही मायने में लोक से जुड़ी हुई है। वे लोकमन, लोकजीवन और ग्राम्य जीवन के वास्तविक प्रवक्ता हैं। वे मूलतः एक आंचलिक पत्रकार हैं, जिनका मन लोक में ही रमता है। वे गाँव, गरीब, किसान और लोक अंचल की प्रदर्शन कलाओं को मुग्ध होकर निहारते हैं, उन पर निहाल हैं और उनके आसपास ही उनकी समूची पत्रकारिता ठहर सी गई है। उनकी पत्रकारिता में लोकतत्व अनिवार्य है। विकास की चाह, लोकमन की आकांक्षाएँ, उनके सपने, उनके आर्तनाद और पीड़ा ही दरअसल श्यामलाल जी की पत्रकारिता को लोकमंगल की पत्रकारिता से जोड़ते हैं। उनकी समूची पत्रकारिता न्याय के लिए प्रतीक्षारत समाज की इच्छाओं का प्रकटीकरण है।

लोक में रचा-बसा उनका समग्र जीवन हमें बताता है कि पत्रकारिता ऐसे भी की जा सकती है। वे अध्यापक रहे हैं और पत्रकारिता से जुड़े रहे हैं। 'नईदुनिया' और 'युगधर्म' जैसे अखबारों से जुड़े रहकर उन्होंने अपने परिवेश, समुदाय और क्षेत्र के हितों को निरंतर अभिव्यक्ति दी है। मूलतः संवाददाता होने के नाते उनके विपुल लेखन का आकलन संभव नहीं है, क्योंकि संवाददाता खबरें या समाचार लिखता है जो तुरंत ही पुरानी पड़ जाती हैं। जबकि विचार लिखने वाले, लेखमालाएँ लिखने वाले पत्रकारों को थोड़ा समय जरूर मिलता है। श्यामलाल जी ने अपने पत्रकारी जीवन के दौरान कितनी खबरें लिखीं और उनसे क्या मुद्दे उठे, क्या समाधान निकले, इसके लिए एक विस्तृत शोध की जरूरत है। उनसे चर्चा कर उनके इस अवदान को रेखांकित किया जाना चाहिए। उनकी यायावरी और निरंतर लेखन ने एक पूरे समय को चिह्नित और रेखांकित किया है, इसमें दो राय नहीं है। अपने कुछ सामयिक लेखों से भी हमारे समय में हस्तक्षेप करते रहे हैं।

गुणों के पारखी-विकास के चितेरे

श्यामलाल जी पत्रकारिता में सकारात्मकता के तत्व विद्यमान हैं। वे पत्रकारिता से प्रतिपक्ष की भूमिका निभाने की अपेक्षा तो रखते हैं किंतु गुणों के पारखी भी हैं। उन्होंने अपनी पूरी जीवन यात्रा में सिर्फ खबर बनाने के लिए नकारात्मकता को प्रश्रय नहीं दिया। वे मानते हैं कि पत्रकारिता का काम साहित्य की तरह ही उजाला फैलाना है, दिशा दिखाना है और वह दिशा है विकास की, समृद्धि की, न्याय की। अपने लोगों और अपने छत्तीसगढ़ अंचल को न्याय दिलाने की गूँज उनकी समूची पत्रकारिता में दिखती है। वे बोलते, लिखते और जीते हुए एक आम-आदमी की आवाज को उठाते, पहुँचाते और बताते हैं। सही मायने में एक संपूर्ण संचारकर्ता हैं। वे एक बेहतर कम्युनिकेटर हैं, जो लिखकर और बोलकर दोनों ही भूमिकाओं से न्याय करता है। अपने गाँव कोटमी सोनार से आकर बिलासपुर में भी वे अपने गाँव, उसकी माटी की सोंधी महक को नहीं भूलते। वे भोपाल, दिल्ली और रायपुर में सत्ताधीशों के बीच भी अपनी वाणी, माटी के दर्द और उसकी पीड़ा के ही वाहक होते हैं। वे भूलते कुछ भी नहीं बल्कि लोगों

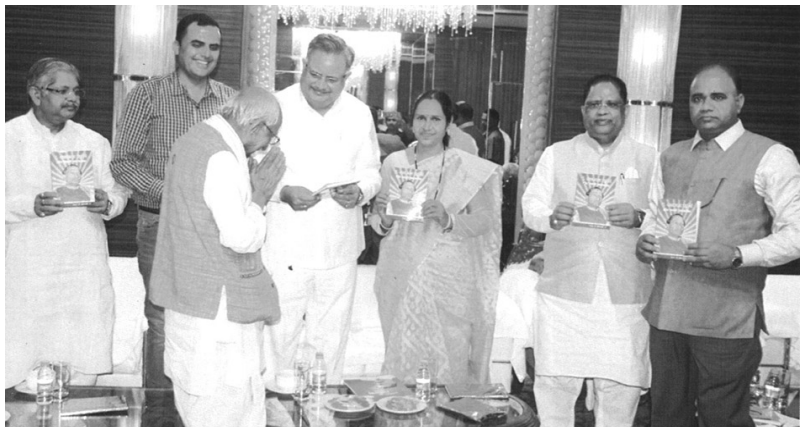

मुख्यमंत्री डा. रमन सिंह ने बिलासपुर में सोमवार, 7 नवंबर को होटल मैरियट में सम्पन्न कार्यक्रम में छत्तीसगढ़ राजभाषा आयोग के प्रथम अध्यक्ष एवं वरिष्ठ पत्रकार-साहित्यकार पं. श्यामलाल चतुर्वेदी पर केन्द्रित डा. सुषमा शर्मा की किताब 'पं. श्यामलाल चतुर्वेदी और उनकी पत्रकारिता' का विमोचन किया। इस मौके पर जिले के प्रभारी मंत्री अजय चंद्राकर, नगरीय प्रशासन मंत्री अमर अग्रवाल, प्रदेश भाजपा के अध्यक्ष धरमलाल कौशिक, सांसद लखनलाल साहू, संसदीय सचिव तोरवन साहू, महापौर किशोर राय एवं पूर्व उपाध्यक्ष नगरपालिका जांजगीर धर्मेन्द्र शर्मा उपस्थित थे।

को भी याद दिलाते हैं कि हमारी जड़ें कहाँ हैं और हमारे लोग किस हाल में हैं। व्यंग्य में कही उनकी बातें अंदर तक चुभ जाती हैं और हमें आत्मावलोकन के लिए मजबूर करती हैं।

श्रेष्ठ संचारक - योग्य पत्रकार

श्यामलाल जी एक योग्य पत्रकार हैं किंतु उससे बड़े संचारक या संप्रेषक हैं। उनकी संवाद कला अप्रतिम है। वे लिख रहे हों या बोल रहे हों। दोनों तरह से आप उनके मुरीद हो जाते हैं। कम्युनिकेशन या संचार की यह कला उन्हें विरासत में मिली है और लोकतत्व ने उसे और पैना बनाया है। वे जीवन की भाषा बोलते हैं और उसे ही लिखते हैं। ऐसे में उनका संचार प्रभावी हो जाता है। वे सरलता से बड़ी से बड़ी बात कह जाते हैं और उसका प्रभाव देखते ही बनता है। आज जब कम्युनिकेशन को पढ़ाने और सिखाने के तमाम प्रशिक्षण और कोर्स उपलब्ध हैं, श्यामलाल जी हमें सिखाते हैं कि कैसे 'लोक' किसी व्यक्ति को बनाता है। श्यामलाल जी इस मायने में विलक्षण हैं। एक संवाददाता होने के नाते लोकजीवन से लेकर राजपुरुषों तक उनकी उपस्थिति रही है। किंतु वे दरबारों में भी अपनी जड़ों को नहीं भूलते। वे खरी-खरी कहते हैं और अपने लोगों के पक्ष में हमेशा एक प्रवक्ता की तरह खड़े दिखते हैं। हमारे समय में श्यामलाल जी का होना दरअसल इस कठिन दौर में मूल्याधारित पत्रकारिता की एक मशाल और मिसाल दोनों है। जबकि बाजार की हवाओं ने लोक तत्व को ही नहीं बल्कि ग्राम्य जीवन तक को मीडिया से बहिष्कृत कर दिया है। तब भी श्यामलाल जी जैसे लोग यह याद दिलाते हैं कि अभी सब कुछ खत्म नहीं हुआ है।

वेदों से पुरानी है लोक चेतना

श्यामलाल जी जैसे साधक हमें बताते हैं कि अपने लोक को बचाने के लिए उसे उसकी मौलिकता में ही स्वीकारना होगा। इस समय की चुनौती यह है कि हजारों-हजार गीत, कविताएँ, साहित्य, शिल्प और तमाम कलाएँ नष्ट होने के कगार पर हैं। किंतु उनके गुणग्राहक कहाँ हैं। एक विशाल भू-भाग में बोली जाने वाली हजारों

बोलियाँ, उनका साहित्य-जो वाचिक भी है और लिखित भी। उसकी कला चेतना, प्रदर्शन कलाएँ सारा कुछ मिलकर एक ऐसा लोक रचती है, जिस तक पहुँचने के लिए अभी काफी समय लगेगा। लोकचेतना तो वेदों से भी पुरानी है। हिंदी अकेली भाषा है जिसका चिकित्सक भी 'कविराज' कहा जाता था। बाजार आज सारे मूल्य तय कर रहा है और यह 'लोक' को नष्ट करने का षड्यंत्र है। यह सही मायने में बिखरी और कमजोर आवाजों को दबाने का भी षड्यंत्र है। इसका सबसे बड़ा शिकार हमारी बोलियाँ बन रही हैं, जिनकी मौत का खतरा मंडरा रहा है। अंडमान की 'बो' नाम की भाषा खत्म होने के साथ इसका सिलसिला शुरू हो गया है। भारतीय भाषाओं और बोलियों के सामने यह सबसे खतरनाक समय है। आज के मुख्यधारा मीडिया के पास इन संदर्भों पर काम करने का अवकाश नहीं है। किंतु समाज के प्रतिबद्ध पत्रकारों, साहित्यकारों को आगे आकर इस चुनौती को स्वीकार करने की जरूरत है। क्योंकि 'लोक' की उपेक्षा और बोलियों को नष्ट कर हम अपनी प्रदर्शन कलाओं, गीतों, शिल्पों और विरासतों को गँवा रहे हैं। जबकि इसके संरक्षण की जरूरत है। श्यामलाल जी दरअसल इसी भावभूमि पर अरसे से काम कर रहे हैं। उनकी पत्रकारिता में यह दरअसल इसी लोकभूमि से बनी और विकसित हुई है।

हम सबके बीच श्यामलाल जी की उपस्थिति सही मायने में एक ऐसे यात्री की उपस्थिति है, जिसकी बेचैनियाँ अभी खत्म नहीं हुई हैं। उनकी आँखों में वही चमक, वाणी में वही ओज और जोश मौजूद है जिसका सपना उन्होंने अपनी युवा अवस्था में देखा होगा। आज भी अखबारों या पत्रिकाओं में कुछ अच्छा पढ़कर अपनी नई पीढ़ी की पीठ ठोंकना उन्हें आता है। वे निराश नहीं हैं, हताश तो बिल्कुल नहीं। वे उम्मीदों से भरे हुए हैं, उनका इंतजार जारी है। एक उजले समय के लिए.. .. एक उजली पत्रकारिता के लिए.. एक सुखी-समृद्ध छत्तीसगढ़ के लिए...आत्मनिर्भर गाँवों के लिए.. एक समृद्ध लोकजीवन के लिए।

(Email - 123dwivedi@gmail.com)

मालवीय भवन, शिवाजी नगर में मध्यप्रदेश कड़ा माणिकपुरी जिझोतिया ब्राह्मण समाज द्वारा आयोजित परिचय सम्मेलन एवं सम्मान समारोह में श्रीमती त्रिवेणी देवी दुबे पत्रकारिता, फोटो पत्रकारिता पुरस्कार वर्ष 2016-17 के लिए फोटो पत्रकार प्रवीण दीक्षित को दीपक दुबे और अनिल दुबे ने प्रदान किया।

इसलिए अखरता है विजय सहगल का चले जाना

श्री विजय सहगल

■ रमेश नैयर

सहज और सरल वरिष्ठ पत्रकार विजय सहगल को गए हुए 7-8 महीने हो गए। सोचता रहा चंडीगढ़, हिमाचल, पंजाब और मुंबई में उनके अनेक साथियों में से किसी ने तो उनके बारे में लिखने का सोचा ही होगा। चूँकि श्री विजय सहगल मुंबई के नवभारत टाइम्स में सहायक संपादक और चंडीगढ़ के दैनिक ट्रिब्यून में लंबे समय तक कार्य करते रहे थे और उसके संपादक के पद से सेवानिवृत्त हुए थे, इसलिए मुझे विश्वास था कि किसी ने उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर अवश्य ही लिखा होगा। 'आंचलिक पत्रकार' के लिए श्री सहगल कई वर्षों से बीच-बीच में लिखते रहते थे, इसलिए भी मैं 'आंचलिक पत्रकार' का हर अंक कुछ व्यग्रता के साथ ये जानने के लिए पलटता रहता कि उन पर कोई आलेख तो मिल ही जाएगा। परन्तु पिछले हफ्ते जब श्री विजयदत्त श्रीधर ने फोन पर शिकवाभरे लहजे में कहा कि आपने अपने अंतरंग साथी पत्रकार विजय सहगल पर अभी तक लिखा क्यों नहीं! दरअसल स्वयं श्रीधर जी को श्री सहगल के निधन की जानकारी कई महीनों बाद मिली थी, वरना वह इतनी देर से तकाजा नहीं करते।

भाई विजय सहगल को गुजरे काफी वक्त हो गया, लेकिन ऐसा भी नहीं है कि मैं कभी भी उनको भूल गया होऊँगा। मई में अचानक एक दिन वरिष्ठ संपादक श्री राधेश्याम शर्मा का फोन आया था कि बुरी खबर सुना रहा हूँ। विजय सहगल नहीं रहे। मुझे इस खबर से मर्मांतक आघात तो लगा था, परन्तु विस्मय नहीं हुआ था, कारण यही 2016 के पहले ही महीने में पंजाबी ट्रिब्यून चंडीगढ़ के कुछ पुराने साथी रायपुर आए थे। ट्रिब्यून पत्र समूह का कोई व्यक्ति रायपुर आए और मुझसे संपर्क किए बिना चले जाए ऐसा होता नहीं है। उन्होंने बताया कि विजय सहगल जी बहुत बीमार हैं, कमजोर हो गए हैं। आप जाओगे तो शायद उन्हें पहचान भी नहीं पाओगे। इस दुखद सूचना ने मुझे हतप्रभ कर दिया। दूसरे ही दिन मैंने भाई विजय सहगल को फोन लगाया। उनकी आवाज कुछ धीमी जरूर थी, परन्तु ऐसी नहीं कि जिससे उनके बहुत रुग्ण होने का एहसास हो। मैं लगातार कई दिन तक बीच-बीच में उनको फोन करता रहा। एक दिन मुझे उनके एक वाक्य ने चौंका दिया। चिंता में भी डाल दिया। वाक्य था ''रमेशजी मरना ही है तो रो-रोकर क्यों मरें''। मैंने राधेश्याम जी से संपर्क करके पूछा कि सहगल क्या वाकई बहुत बीमार हैं। उन्होंने कहा कमजोर तो काफी हो गए हैं, परन्तु चिंता की कोई बात तो मुझे मालूम नहीं हुई है। कुछ और दिनों के बाद मैंने सहगल जी को फोन किया तो उनकी आवाज धीमी और निराशा से भरी हुई थी। कहा - ''भाई, बात करने का आज मन नहीं कर रहा है''। चंद और दिनों के बाद फोन किया कि उन्होंने एक वाक्य बोलकर अपना मोबाइल रख दिया। वाक्य था ''नींद आ रही है, सोना चाहता हूँ।'' उसके

बाद मैंने जब भी फोन लगाया उन्होंने उसे अटैंड नहीं किया। मेरे सामने विजय सहगल जी का वो भरा पूरा और खिलखिलाता हुआ चेहरा उभर गया जिसे मैं पाँच वर्षों से अधिक समय तक देखता रहा था।

विजय सहगल जी और मैं दैनिक ट्रिब्यून में सहायक संपादक थे। हम लोगों का एक ही चेम्बर था। बीच में अपारदर्शी काँच का एक पार्टिशन था। हम एक दूसरे की उपस्थिति महसूस तो कर सकते थे पर साफतौर पर देख भी नहीं पाते थे। इस पर मैं उन्हें उर्दू का यह शेर सुना दिया करता था, ''क्या ही परदा है कि चिलमन से लगे बैठो हो, साफ छुपते भी नहीं नजर आते भी नहीं''। इसके उत्तर में उनका एक उन्मुक्त ठहाका सुनाई देता और वो उठकर मेरे सामने कुर्सी पर बैठ जाते। ट्रिब्यून एक मायने में बहुत ही उदार था। वो था बहुत सस्ती दरों पर चाय और खाने-पीने की अन्य सामग्री एक टेलीफोन करने पर 5-7 मिनट में ही हमारे टेबल पर पहुँच जाना। श्री सहगल अपने ठहाकों के लिए व्यापकता से जाने जाते थे। श्रीमती सहगल भी जब कभी उनके साथ हमारे घर आती तो मेरे मन से एक ही आवाज उठती - ''वेल मेड फॉर ईच अदर''। हम दोनों के बीच न कोई स्पर्धा थी न कोई ईर्ष्या, द्वेष।

> **“ श्री सहगल ने कहा ''यार, हम दोनों में इतना घना लगाव हो गया है कि आपका जाना अखरेगा। पता नहीं दूसरा सहायक संपादक कौन और कैसा होगा''। उनके इस वाक्य ने मेरे मन के इस संशय को दूर कर दिया कि वह कहीं मुझसे कोई ईर्ष्या रखते हैं। बाद में कई वर्षों तक मैं श्री सहगल से कोई जीवंत संवाद नहीं रख पाया, हम दोनों में संवाद फिर से तब स्थापित हुआ जब वह 'आंचलिक पत्रकार' के लिए लिखने लगे। ”**

मेरी फितरत थी कि मैं बहुत दिनों तक टिककर किसी भी संस्थान में रह नहीं पाता था। ट्रिब्यून समाचार पत्र समूह से बेहतर कोई पत्र समूह मुझे अपनी आधी सदी से अधिक की पत्रकारिता में नहीं मिला था। वहाँ एक प्रतिबंध था कि उसका कोई भी कर्मचारी बाहर के किसी पत्र, पत्रिका में लिख नहीं सकता था। वैसे काम वहाँ इतना कम करना पड़ता था कि दो ढाई घंटों के बाद का वक्त या तो हम लाइब्रेरी में काटते या पंजाबी ट्रिब्यून अथवा द ट्रिब्यून के संपादकीय विभाग के मित्रों से गपशप में। मेरी अंतरंगता पंजाबी ट्रिब्यून के संपादक हरभजन हलवारवी और सहायक संपादक सिंगारा सिंह भुल्लर से अधिक थी। उनसे मैंने चंडीगढ़ रहते हुए अपनी मातृभाषा पंजाबी में संवाद करना सीखा था। लंबे समय तक मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ में रहते हुए मैं पंजाबी लगभग भूल गया था, उसमें बातचीत तो मेरे लिए असंभव हो गई थी। पंजाब और अन्यत्र अपने रिश्तेदारों के यहाँ आना जाना होता तो पंजाबी न बोल पाने पर थोड़ा अफसोस भी होता। विजय सहगल जी यूँ तो मेरे स्वजातीय थे, परन्तु वे केवल हिंदी में ही बात करते थे।

श्री सहगल की पहचान नवभारत टाइम्स में काम कर चुकने के कारण मुंबई और दिल्ली में भी थी। चूँकि मैं स्वयं दिनमान और नवभारत टाइम्स के लिए रायपुर से लिखता रहता था इसलिए परिचय मेरा भी था। इसी आधार पर हम दोनों के कुछ ऐसे साझा मित्र चंडीगढ़ और दिल्ली में थे जिनसे हम लोगों का संवाद होता रहता था। हम दोनों में कोई प्रतिद्वंद्विता नहीं थी। फिर भी चूँकि दैनिक ट्रिब्यून का अगला संपादक हम दोनों में से किसी एक का होना संभावित था, इसलिए दोनों

के मन में कहीं न कहीं खामोश सी स्पर्धा कभी-कभी जाने अनजाने कुनमुना उठती रही होगी। मेरा परिवार, विशेषकर माता-पिता रायपुर में थे, इसलिए कई बार मेरा मन होता कि ये सब छोड़कर रायपुर लौट जाऊँ। जब कभी मैं हरभजन हलवारवी से अपनी ये इच्छा व्यक्त करता तो वो बड़े अधिकार पूर्वक समझाते 'ट्रिब्यून सोने का पिंजड़ा है, इसे छोड़कर कभी किसी ने अन्यत्र जाने की नहीं सोची'। धीरज से यहीं लगे रहो। लेकिन मुझ पर तो उर्दू का ये शेर लागू होता था ''तुमने तो आदत सी ही बना ली है मुनीर। जिस शहर में भी रहना, उक्ताए हुए रहना''।

इसका एक लाभ ये हुआ कि श्री सहगल इस बात से आश्वस्त हो गए कि दैनिक ट्रिब्यून के अगले संपादक के रूप में दूर-दूर तक उनका प्रतिद्वंद्वी नहीं हूँ। वैसे भी हमारे संपादक श्री राधेश्याम शर्मा का 7 साल से अधिक का कार्यकाल अभी शेष था। ये भी एक कारण था कि हम दोनों में संशय की कोई दीवार कभी खड़ी नहीं हो पाई। विजय सहगल जी साहित्यिक अभिरुचि के पत्रकार थे। साहित्यिक रचनाएँ और सामाजिक राजनीतिक लेख नियमित रूप से दैनिक ट्रिब्यून के लिए लिखते रहते। उनकी इच्छा रहती थी कि अखबार के साहित्य परिशिष्ट के संपादन का दायित्व उन्हें सौंप दिया जाए। परन्तु न जाने किन कारणों से संपादक जी ने वो जिम्मेदारी मुझे दे दी थी। उसके संपादन के दौरान मैंने ये अनुभव किया कि ये साहित्यकारों की बिरादरी में सूरजमुखियों की संख्या हर जगह एक ही तरह इफरात में है, जो साहित्यकार कुछ महीनों पहले तक विजय सहगल जी का जयजयकार किया करते थे वो अचानक उनसे दूरियाँ बनाने लगे। मैं इसे अनुभव करता और थोड़ा सा क्लांत भी होता। क्योंकि कल तक जो साहित्यकार श्री सहगल के चक्कर लगाया करते थे वो मेरे घर की परिक्रमा करने लगे। मुझे उन सब पर दया भी आती और हल्का सा गुस्सा भी। एक दिन मैंने श्री सहगल से उन साहित्यकारों की फितरत के बारे में चर्चा की तो उनका चेहरा कुछ उदास हो गया। कहने लगे कि भाई साहित्यकारों से अधिक स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित कोई और बिरादरी नहीं होती। संभव है ये उनकी अनुभवजन्य टिप्पणी रही हो।

पाँच वर्ष से कुछ अधिक समय तक मैं दैनिक ट्रिब्यून में रहा और फिर रायपुर में दैनिक भास्कर का संस्थापक संपादक बनाए जाने के प्रस्ताव पर अपने गृहनगर की तरफ लौटने का निर्णय कर बैठा। राधेश्याम शर्मा जी और प्रधान संपादक प्रेम भाटिया जी ने भी मुझे समझाया कि ट्रिब्यून छोड़कर जाना एक बड़ी गलती होगी। अच्छी बात ये लगी कि श्री सहगल ने भी कहा ''यार, हम दोनों में इतना घना लगाव हो गया है कि आपका जाना अखरेगा। पता नहीं दूसरा सहायक संपादक कौन और कैसा होगा''। उनके इस वाक्य ने मेरे मन के इस संशय को दूर कर दिया कि वह कहीं मुझसे कोई ईर्ष्या रखते हैं। बाद में कई वर्षों तक मैं श्री सहगल से कोई जीवंत संवाद नहीं रख पाया, उसके दो कारण थे एक तो यह कि वह दैनिक ट्रिब्यून के संपादक के पद पर पदोन्नत होकर अधिक व्यस्त हो गए थे। दूसरा कारण यह कि मैं भी रायपुर में दैनिक भास्कर की स्थापना में तल्लीन हो गया था। हम दोनों में संवाद फिर से तब स्थापित हुआ जब वह 'आंचलिक पत्रकार' के लिए लिखने लगे। उनके लेख नपे-तुले और सात्विक किस्म के हुआ करते थे। श्रीधर जी की कृपा से मैं भी यदा-कदा 'आंचलिक पत्रकार' के लिए लिखने लगा था, फिर श्री सहगल और मेरी चर्चा एक-दूसरे के लेख पर बातचीत को लेकर होने लगी। यह सिलसिला कई वर्षों तक तब तक चला जब तक कि श्री सहगल गंभीर रूप से अस्वस्थ हो गए और उन्होंने लिखना रफ्ता-रफ्ता बहुत कम कर दिया। आज श्री सहगल नहीं हैं तो चंडीगढ़ में मेरा एक कोना हमेशा के लिए खाली हो गया है। यह खालीपन अखरता है।

(Email - rameshnayyar50@gmail.com)

एक संवेदनशील रचनाकार का यूँ चले जाना...

■ अरुन नैथानी

उस दिन खबर सुनकर सहसा विश्वास नहीं हुआ संवेदनशील साहित्यकार और दैनिक ट्रिब्यून के पूर्व संपादक विजय सहगल हमारे बीच में नहीं रहे। सेहत कुछ ढीली जरूर थी, एक आपरेशन के बाद शरीर शिथिल था। मगर यह सपने में कल्पना न की थी कि वे हमें इतनी जल्दी छोड़कर चले जाएँगे। मेरे साथ उनका व्यक्तिगत लगाव था। जब मैंने वर्ष 2000 में अमर उजाला छोड़कर दैनिक ट्रिब्यून ज्वाइन किया था तो वे ही दैनिक ट्रिब्यून के संपादक थे। उन्होंने परीक्षा ली और आशीर्वाद भी दिया। लगाव की वजह उनका साहित्य अनुराग भी था और संपादक के रूप में एक सहज व्यक्ति भी। मेरा कमरा उनके कमरे के साथ लगा था। काम की वजह से दिन में कई बार मुलाकात हो जाती। सेवानिवृत्ति के बाद भी यह सिलसिला बना रहा। वे लगातार संपर्क में रहते। जब भी दैनिक ट्रिब्यून में कुछ भेजते तो मुझ से विचार बाँट लेते।

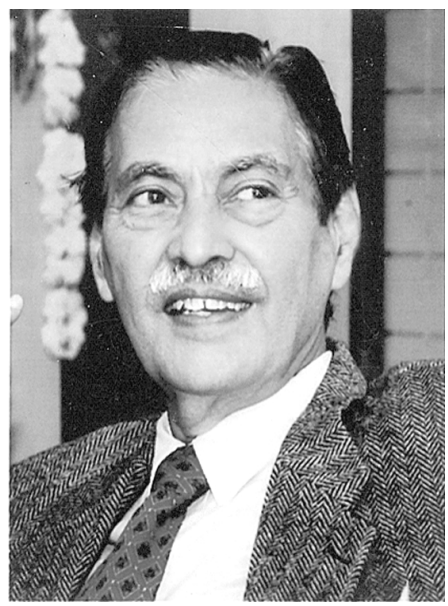

पत्रकारिता की दुनिया में अच्छा पत्रकार होना और अच्छा व्यक्ति होना अब दुर्लभ सा संयोग है। मगर विजय जी में ये खूबी थी। वे रचनाकारों और पत्रकारों के प्रति संवेदनशील और सहृदय रहे। आत्मीयता का भाव सदैव सशक्त रहा। वे चार दशक तक साहित्य और पत्रकारिता के जगत में जीवंत मूल्यों के साथ सक्रिय रहे और अंतिम दिनों में भी।

विजय जी का जन्म जुलाई 1943 में हिमाचल के सपाटू में प्रसिद्ध लेखक, प्रकाशक, समाजसेवी और स्वतंत्रता सेनानी प्रेमचंद सहगल के घर हुआ था। शुरुआती पत्रकारिता शिमला से शुरू की। बाद में जालंधर से प्रकाशित वीर प्रताप में उप संपादक बने। कालांतर टाइम्स समूह के नवभारत टाइम्स, सारिका और धर्मयुग में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। अज्ञेय जी के साथ कई नये प्रयोग नवभारत टाइम्स में किए। खबरों पर गहरी पकड़ तथा साहित्य सृजन के साथ उन्होंने अपनी विशिष्ट जगह बनाई। वर्ष 1978 में जब चंडीगढ़ से दैनिक ट्रिब्यून का प्रकाशन शुरू हुआ तो उन्होंने बतौर सहायक संपादक अपने

कॅरियर की नई पारी शुरू की। खबरों की गहरी समझ, हिंदी, पंजाबी और अँगरेजी पर पकड़ और नेतृत्व क्षमता के चलते वे वर्ष 1990 में दैनिक ट्रिब्यून के संपादक बने। उनके संपादन में समाचार पत्र ने पत्रकारिता के स्थापित मूल्यों की रक्षा के साथ नए मानदंड स्थापित किए। पत्रकारिता के प्रति उनके समर्पण का पता इस बात से चलता है कि सेवानिवृत्ति के बाद भी वे हिमाचल के एक दैनिक समाचार पत्र में लगातार संपादकीय लिखते रहे।

सहगल जी के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी खासियत यह रही कि सेवानिवृत्ति के बावजूद वे पत्रकारिता और साहित्य की दुनिया में लगातार सक्रिय रहे। विश्वविद्यालयों में पत्रकारिता के छात्रों को प्रशिक्षण, लेखन और साहित्य सृजन का सिलसिला लगातार चलता रहा। बावजूद इसके कि पिछले कुछ सालों से स्वास्थ्य ठीक न था। नौ मई को जब विजय जी 73 साल की गौरवशाली जिंदगी पूरी कर परलोक गए, वे तब भी पूरी चेतना सजगता के साथ लेखन में रत थे। कुछ दिन पहले उन्होंने अरविंद कुमार की चर्चित पुस्तक 'शब्द वेध' की समीक्षा लिखी थी। एक कहानी भी सपाटू के परिवेश पर दैनिक ट्रिब्यून में प्रकाशन हेतु भेजी थी। तब मुझे भी एहसास न था कि यह उनकी आखिरी कहानी छाप रहा हूँ। एक बार मुझसे कहा कि मैं अर्द्धांगिनी श्रीमती शशि सहगल की कहानियों के साथ एक कथा संकलन प्रकाशित करने का इरादा रखता हूँ। विधि की विडंबना देखिए कि उनका यह प्रयास अधूरा ही रह गया। उम्मीद है कि प्रतिष्ठित पदों पर कार्यरत उनके पुत्र अतुल और विपुल उनके अप्रकाशित साहित्य के प्रकाशन का दायित्व निभाएँगे। वे सपाटू के स्वतंत्रता आंदोलन को लेकर एक उपन्यास भी लिख रहे थे, उसके कुछ अंश नवनीत में श्री विश्वनाथ सचदेव ने प्रकाशित भी किए थे।

दरअसल विजय सहगल जी पत्रकारिता और साहित्य के संगम थे। सही मायनों में एक संवेदनशील इंसान ही एक अच्छा साहित्यकार होता है। मानवीय सरोकारों तथा सामाजिक प्रतिबद्धता की सोच के चलते विजय जी ने गुणवत्ता का साहित्य रचा। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने एक अलग मुकाम बनाया जो कम ही लोगों को हासिल होता है। यूँ तो पहले कहानीकार के रूप में उन्होंने जगह बनाई। नव-धनाढ्य वर्ग पर केंद्रित एक उपन्यास के धारावाहिक अंश दैनिक वीर प्रताप में प्रकाशित हुए। मगर वे उसे पुस्तक रूप में प्रकाशित न कर पाए। उनकी उल्लेखनीय रचनाओं में उपन्यास - बादलों के साये, कहानी संग्रह - आधा सुख और यात्रा वृत्तांत - आस्था की डगर, खास चर्चित रहे। अनेक पुस्तकों के संपादन के अलावा हिमाचल की हिंदी पत्रकारिता के उद्‌भव और विकास पर शोधग्रंथ लिखकर उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसके अलावा वे चंडीगढ़ साहित्य अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट तथा इंडियन सोसाइटी ऑफ ऑथर्स सहित कई प्रतिष्ठित संस्थाओं से जुड़े रहे। इसके साथ वे लगातार विभिन्न चैनलों पर सम-सामयिक विषय के विमर्श करते नजर आते रहे।

कहते हैं भ्रमण और पर्यटन मनुष्य के अनुभवों को विस्तार देते हैं। उन्हें भी घूमना खूब रास आता था। उन्होंने एक संपादक के तौर पर और निजी यात्राओं के रूप में अमेरिका, कनाडा, बुरकिना फासो, कजाकिस्तान, उज्बेकिस्तान, अर्जेंटीना, घाना, मलेशिया आदि की यात्राएँ की।

विजय जी को पत्रकारिता और साहित्य जगत में पर्याप्त प्रतिष्ठा और सम्मान मिले। उन्हें उत्कृष्ट पत्रकारिता के लिए मातृश्री सम्मान, यशपाल साहित्य सम्मान, उदन्त मार्त्तण्ड पत्रकारिता सम्मान और पंजाब कला साहित्य अकादमी पुरस्कार समेत कई सम्मान मिले। फिर भी सबसे बड़ा सम्मान तो उनकी सामाजिक स्वीकार्यता और प्रतिष्ठा है, जिसके लिए उन्हें आज भी आदर के साथ याद किया जाता है।

(Email - arunknaithani@gmail.com)

सामग्रीदाताओं से विनम्र अनुरोध

माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल की ख्याति यहाँ उपलब्ध प्रचुर शोध संदर्भ सामग्री के कारण पूरे देश में और विदेशों तक पहुँच चुकी है। देश-विदेश के शोधार्थी, लेखक, पत्रकार, संचारक तथा अन्य बुद्धिजीवी यहाँ वांछित संदर्भ सामग्री पाकर संतोष का अनुभव करते हैं। ग्रन्थों, पत्र-पत्रिकाओं का संग्रह दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है।

यहाँ संग्रहीत सामग्री उन उदार मनीषियों और उनके परिजनों से संग्रहालय को प्राप्त हुई है, जो आश्वस्त हैं कि सामग्री यहाँ अध्येताओं की वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों के ज्ञान लाभ के लिए एक छत के नीचे संरक्षित है। यही विश्वास हमारी थाती है। हम सभी सामग्रीदाताओं के आभारी हैं।

सामग्रीदाताओं के ध्यानाकर्षण के लिए अनुरोध है कि -

(1) संग्रहालय में उसी सामग्री की उपयोगिता है जो शोध-संदर्भ की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

(2) पाठ्य पुस्तकों एवं प्रश्नोत्तरियों की उपयोगिता नहीं है।

(3) किसी प्रकार की सस्ती मनोरंजन सामग्री अनुपयोगी है।

(4) अभिनंदन ग्रंथ तथा पत्र-पत्रिकाओं के एक ही अंक की एक से अधिक प्रतियाँ उपयोगी नहीं हैं।

(5) गृह पत्रिका तथा स्मारिका आदि की भी उपयोगिता नहीं है।

(6) संग्रहालय को प्रदान की गई सामग्री की वापसी की व्यवस्था नहीं है।

(7) प्राप्त सामग्री का विषयानुसार वर्गीकरण कर सँजोया जाता है।

(8) फोटोकापी की सुविधा नहीं है।

(9) संदर्भ सामग्री बाहर ले जाने की अनुमति नहीं है।

संस्थापक-संयोजक
माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान
माधवराव सप्रे मार्ग (मुख्य मार्ग क्र. 3), भोपाल (म.प्र.) - 462 003
टेलीफोन - (0755) 2763406, 4272590

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक विजयदत्त श्रीधर द्वारा दृष्टि आफसेट, भोपाल से मुद्रित तथा माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल (म.प्र.) 462 003 से प्रकाशित संपादक – विजयदत्त श्रीधर

सप्रे संग्रहालय का

विज्ञान एवं लोक विज्ञान चेतना अनुष्ठान

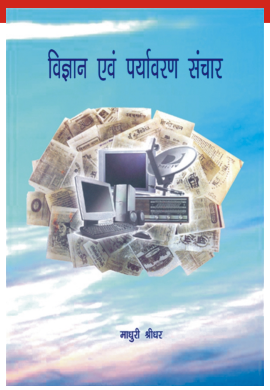

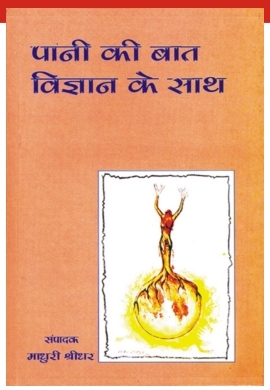

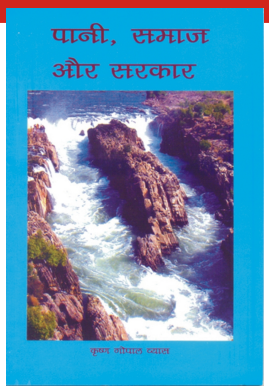

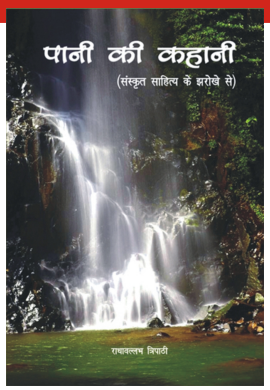

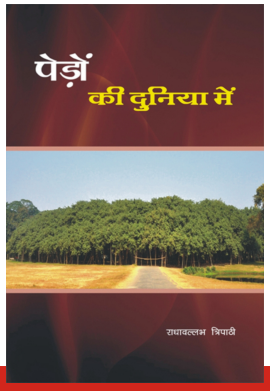

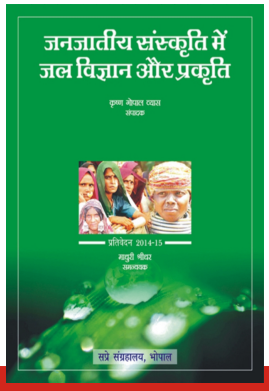

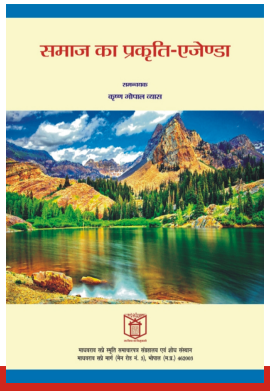

सप्रे संग्रहालय

सा विद्या या विमुक्तये

प्रशासनिक अधिकारी

माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान

माधवराव सप्रे मार्ग (मुख्य मार्ग क्र. 3), भोपाल (म.प्र.) - 462 003

दूरभाष - (0755) 2763406, 4272590

Email - sapresangrahalaya@yahoo.com, editor.anchalikpatrakar@gmail.com

Website - www.sapresangrahalaya.com

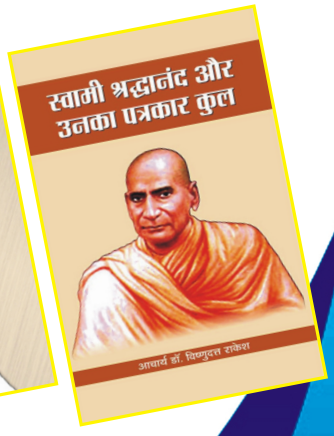

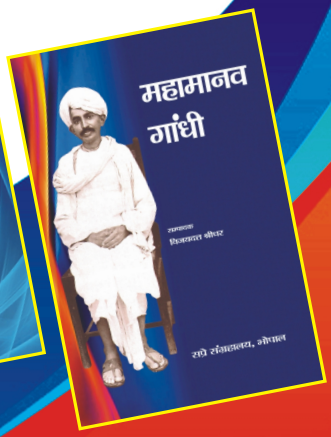

सप्रे संग्रहालय के शोध एवं प्रकाशन

संपादकीय टिप्पणियाँ, पुरोधा संपादकों के पत्रकारिता विषयक व्याख्यानों और आलेखों का समावेश तथा भारत में सभी भाषाओं के समाचारपत्रों और पत्रिकाओं का प्रामाणिक वृत्तांत लिपिबद्ध करने के साथ-साथ भारतीय नवजागरण आंदोलन की सभी गतिविधियों का यथा प्रसंग उल्लेख इन ग्रंथों में हुआ है।

प्रशासनिक अधिकारी
सप्रे संग्रहालय, भोपाल
दूरभाष - (0755) 2763406, 4272590
Email - sapresangrahalaya@yahoo.com
editor.anchalikpatrakar@gmail.com
Website - www.sapresangrahalaya.com